समर्पण चेरिटेबल ट्रस्ट का 14वाँ पुष्प
श्री राम-नन्दिनी ग्रंथमाला का 8वाँ पुष्प

पण्डित भोलाराम शास्त्री

लेखक :
राजकुमार, द्रोणगिरि

प्रकाशक :
समर्पण
18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91 9414103492

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ (23 जून, 2016)
द्वितीय संस्करण : 2000 प्रतियाँ (9 अक्टूबर 2016)
तृतीय संस्करण : 3000 प्रतियाँ (5-12 मार्च 2017, फाल्गुन माह की अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर)

प्राप्ति स्थान : 18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.), मो. 91-9414103492

साहित्य प्रकाशन सहयोग राशि : 25/-

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रकाशकीय

(तृतीय संस्करण)

'**समर्पण**' का नये लेखकों के विचारों को आप सब तक पहुँचाना ही उद्देश्य है। अभी तक हमारे द्वारा 13 पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं, जिन्हें पाठकों ने हृदय से सराहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमें पुस्तक प्रकाशन के पूर्व ही अर्थ सहयोग प्राप्त हो जाता है। अत: बाद में हम 'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ' की भावना से पाठक को साहित्य उपलब्ध कराते हैं, इसमें जो राशि आती है, उसे अन्य प्रकाशन में आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

'**समर्पण**' का प्रस्तुत प्रकाशन राजकुमार, द्रोणगिरि द्वारा लिखित **पण्डित भोलाराम शास्त्री** है। पुस्तक के प्रमुख पात्र भोलारामजी अपने भोलेपन से अपनी संगति में आये व्यक्तियों को स्वाध्याय की प्रेरणा 'स्वाध्याय: परमं तप:' या 'ज्ञान ही सर्व समाधानकारक है, अज्ञान सर्व समस्याकारक/दु:खदायक है' मानकर देते हैं।

पुस्तक सर्व सामान्य द्वारा पठनीय ही नहीं, स्वाध्याय से दूर रहने वाले सहृदय व्यक्तियों तक पहुँचाने योग्य भी है।

पुस्तक, प्रकाशन के पूर्व पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर, पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री कोटा, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री जयपुर, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा, डॉ. मनीष शास्त्री मेरठ, श्री अजित जैन बड़ौदरा ने भलीभांति देखी है व उनके द्वारा दिये गये सुझावों का उपयोग भी किया गया है। सभी को उनके प्रयासों हेतु हार्दिक धन्यवाद।

प्रस्तुत संस्करण को शुद्ध व परिमार्जित करने हेतु **पण्डित श्री देवेन्द्रजी जैन बिजौलिया** एवं विषयानुसार चित्रांकन के लिए **श्रीमती प्रिया-संजय सिद्धार्थी इन्दौर** का भी बहुत-बहुत आभार।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर एवं अर्थ सहयोग हेतु **श्रीराम-नंदनी ग्रंथमाला** के संचालकों व अन्य साधर्मियों का भी आभार।

लेखन/मुद्रण में किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया हमें अवगत करायें, जिससे कि भविष्य में ध्यान रखा जा सके।

अब आपके हाथों में है – '**पण्डित भोलाराम शास्त्री।**'

निवेदक

समर्पण परिवार

मो. 9414103492

मन की बात

आज की व्यस्तता भरी जिन्दगी में यदि व्यक्ति कुछ छोड़ रहा है तो मंदिर, स्वाध्याय और धर्म। अन्य गतिविधियाँ निरन्तर वृद्धिंगत हैं, खाना-पीना-घूमना-फिरना-रिश्तेदारी निभाना यह पहले भी होता था, अब भी; पर मंदिर का समय नहीं कटता था, अब आ गया फेसबुक/वाट्सएप का जमाना तो लोग पूर्व के सभी कार्य करते हुये इनको सम्मान के साथ पूरा समय देने लगे, समय नहीं है तो बस एक मंदिर के लिये। हजार बहाने हैं समय की कमी, आधुनिकता, व्यस्तता, व्यवसाय....आदि।

पण्डित 'भोलाराम शास्त्री' ने अपनी ओर से इन बहानेबाजों को समझाने की कोशिश की है। इसमें वह कितने सफल होते हैं, पता नहीं। वह तो कहते ही हैं कि हम तो 'गाँव के गंवार आदमी हैं' यह उनका हास्य/व्यंग्य भरा तकिया कलाम समझदारों को सोचने को मजबूर करता है कि सच में गंवार कौन है ?

मेरे द्वारा जो भी लिखा जा रहा है, पता नहीं चाह कर भी आध्यात्मिक विषय पर नहीं लिखा जा रहा है, जबकि कक्षा/प्रवचन का मेरा प्रिय विषय अध्यात्म ही है। अस्तु! मुझे स्वयं इस बात की प्रसन्नता हुआ करती है कि जिन विषयों पर सोचते कई लोग हैं, पर लिखते कम हैं, उन विषयों पर लिखने को दिमाग में आता है और जिस भी भाषा-शैली में लिखा जाता है, पाठकों

द्वारा सराहना भी मिल जाती है, अब सराहना स्नेह के कारण मिलती है या नवजात लेखक-कवि है इसलिये प्रोत्साहन करने के लिए या फिर नूतन विषय पढ़ने को मिलता है इसलिये; पर आपका प्रोत्साहन पाकर और लिखने का मन करता है।

मेरा निवेदन है कि जो कुछ भी लिखा है, वह सर्व सामान्य को लक्ष्य करके लिखा है, अत: यदि आप सर्व सामान्य तक पुस्तिका को पहुँचाने में तन-मन-धन से सहभागी बनना चाहें तो बन सकते हैं।

दो पुस्तिकायें 'लक्ष्य' जिसमें युवा वर्ग को देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप व कुछ आवश्यक सिद्धान्त एक कथानक के माध्यम से सिखाने का प्रयास किया है और दूसरी 'पापा जब बच्चे थे' जिसमें बालकों की कुछ चुलबुली घटनाओं के आधार से कुछ सन्देश देने का प्रयास किया है, यह दोनों पुस्तकें लगभग आधी हो चुकी हैं। 'मध्यान्तर के बाद' और 'ऐसा क्यों होता है' भी मस्तिष्क में चल रही हैं, उसमें क्या-क्या विषय पिरोये जायें, उस पर साथियों से चर्चा चल रही है। वह भी लगभग एक वर्ष में आपके सम्मुख प्रस्तुत होंगी।

आपके सहयोग व सुझावों का सदैव इन्तजार रहेगा।

- राजकुमार, द्रोणगिरि
मो. 9414103492

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट
एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम – समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट

स्थापना तिथि – 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल –

संरक्षक – 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री कन्हैयालाल दलावत, 3. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 4. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 5. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा, 6. श्रीमती स्वाति जैन उदयपुर।

अध्यक्ष – राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** – अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** – रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** – डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** – पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** – पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा

उद्देश्य – 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति – 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना

से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें–सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि – 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **स्नातकों द्वारा स्नातकों के लिए शिक्षा चिकित्सा सहायता योजना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना – साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदन – यह छोटी संस्था आपके सहयोग से समाज में कुछ कार्य करना चाहती है, यदि आप हमारे विचारों से सहमत हों, तो आप भी आर्थिक सहयोग प्रदान कर या अपनी सहमति देकर हमारा उत्साहवर्धन कर सकते हैं। यदि कोई भाई हमें अर्थ सहयोग न देकर, सीधे ही इच्छुक को देना चाहें तो भी हमें अपनी सहमति दे सकते हैं; आवश्यकतानुसार हम इच्छुक को आपसे संपर्क करने हेतु भी सूचित कर सकते हैं। साहित्य प्रकाशन सहयोगी बन सकते हैं।

हमारा उद्देश्य कुछ अलग ढंग से समाज में जागरुकता लाना व सहयोग करना है। आपके सुझाव व सहयोग सदैव अपेक्षित हैं। आप जब, जो, जैसे कर सकते हैं, आत्महित व समाजहित में जरूर कीजिए। बस यही अनुरोध है।

निवेदक – **समस्त ट्रस्ट मण्डल, समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट,**
उदयपुर (राजस्थान)

समर्पण

चिरंजीव अगम जैन (प्रिंस)

को

तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार से सुरभित

जीवन जीते हुए

संघ लोक सेवा आयोग में

हमारे किसी भी प्रकार के सहयोग किये बिना

चयनित होने के अवसर पर

इस भावना के साथ कि -

जीवन में किसी के सहयोग

की अपेक्षा न रहे।

विषयानुक्रमणिका

क्र. विषय	पृष्ठ
1. शील ही शृंगार है...	11
2. शांति से जीवन जीने की कला ही धर्म...	19
3. टाइमपास...	30
4. घड़ी घड़ी में घड़ी जा रही...	37
5. डरे मृत्यु से तदपि टलत न...	44
6. काल करे सो आज कर...	50
7. धर्म कब ?...	60
8. पर की आस – अंधविश्वास...	69
9. दान के लिए कमाओ मत...	79
10. विरासत...	89
11. संस्कार ही संपत्ति है...	97
12. समझदारी...	104
13. गुण ही आभूषण...	113
14. सल्लेखना...	119

प्रस्तुत प्रकाशन में प्राप्त सहयोग

1. श्री मुकेशकुमार जैन (तलाटी)	5000.00
2. श्री अमित जैन (डीटीडीसी), दिल्ली	2000.00
3. श्री नेमिचन्द्र चंपालाल भोरावत चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100.00
4. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	1000.00

1

शील ही श्रृंगार है...

सिद्धपुर निवासी पण्डित भोलाराम शास्त्री अपने सुपुत्र सिद्धप्रकाश के पास रहने के लिए शिवपुरी आये हुये हैं। पण्डितजी यथा नाम तथा गुण। आज के युग में ऐसे बहुत लोग हैं, जो ऊपर से भोले हैं, पर अन्दर से भाले हैं, परन्तु भोलाराम शास्त्री छल-कपट व आधुनिकता की चकाचौंध से दूर अपने छोटे से गाँव में, बड़ा सा दिल लेकर रहते थे।

सिद्धपुर छोटा-सा गाँव जहाँ विकास के नाम पर विनाश अभी प्रारंभ ही हुआ था, पर पण्डितजी तो टी.वी., मोबाइल, नेट, कम्प्यूटर आदि की दुनिया से दूर रहते थे। उनका बेटा सिद्धप्रकाश शहर में आकर अच्छी नौकरी कर रहा था, उससे भी कभी वह फोन से बात नहीं करते थे, किसी से आते-जाते ही उसके समाचार पूँछ लेते व अपने समाचार बता देते थे।

आजीविका हेतु उनकी एक छोटीसी किराने की दुकान थी। उसमें भी उनका नियम था कि दैनिक घर खर्च लायक

बिक्री हो जाती तो दुकान बन्द कर देते। उधारी तो उनकी दुकान पर चलती ही नहीं थी, यदि कोई परिचित कभी किसी कारण से उधार ले भी जाता तो उनके यहाँ पर खाता नहीं चलता था, उधार लेने वाला स्वयं ही पैसे दे जाये तो ठीक, न दे जावे तो वे कभी मांगते नहीं थे। उनका सदैव सिद्धान्त रहा कि 'उतने पैर पसारिये, जितनी लम्बी सौर (चादर)' इस मान्यता के कारण उन्हें जीवन में कभी कोई कमी ही नहीं लगी और शान्ति से जीवन बिताया। पूजन/पाठ/सामायिक/ स्वाध्याय में ही उनका अधिकांश समय बीतता रहा।

श्रीमतीजी का स्वर्गवास हो जाने से अब वह अपने बेटे के पास रहने आ गये थे। बड़े शहर के दर्शन उन्होंने पहली बार किये थे। यहाँ उनका मन तो नहीं लग रहा था, पर सिद्धपुर में अकेले होने एवं बेटे-बहू के आग्रह व सेवाभाव के कारण शिवपुरी में ही रह रहे थे।

उनके बेटे के घर में एक लड़की स्वीटी का रोजाना आना-जाना होता। करीब 15 वर्ष की आयु होगी। वह उसे जब भी देखते, वह अपने कद के हिसाब से छोटे-छोटे कपड़े पहने हुए रहती और कभी तो वे जगह-जगह से फटे भी होते थे।

पण्डित भोलाराम को यह देखकर दयाभाव जागृत हुआ।

एक दिन जब वह लड़की उनके घर आई व वापिस जाने लगी, तब उन्होंने उससे कहा – बेटी! जरा रुको। वह उनके पास ही खड़ी हो गई। वह उस दिन भी जांघ तक का फटा सा हाफ पेन्ट व छोटे–छोटे बांह वाली शर्ट पहने हुई थी।

पण्डित भोलाराम ने अपनी बहू समता को आवाज लगाई – 'बहू ओ बहू !'

'जी बाबूजी' कहते हुए उनकी बहू दौड़ते हुए आई।

'बेटा! अपने घर में तुम्हारे या अपनी बेटी श्रद्धा के अच्छे से कपड़े हों तो इस बेचारी बेटी को दे दो न; इसके पास ढ़ंग के कपड़े नहीं हैं; इन कपड़ों में यह अच्छी नहीं लगती है।'

समता और स्वीटी ने जब भोलारामजी की बात सुनी तो

दोनों ही पण्डितजी के भोलेपन पर हँसने लगे। उन्हें हँसते देखकर पण्डितजी बोले – 'अरे भाई! क्या बात हो गई, तुम दोनों हँस क्यों रहे हो ? मैंने कुछ गलत कह दिया क्या?'

समता बोली – 'बाबूजी ! हँसने वाली बात तो आप कर ही रहे हैं, यह स्वीटी सामने जो बड़ा बंगला दिख रहा है, उसके मालिक की छोटी बेटी है। और जो ये कपड़े आप फटे व छोटे कह रहे हो, वे बहुत कीमती हैं और यह तो आज का फैशन है, यह फटे हुए नहीं हैं।'

भोलारामजी बहू की बातें सुनकर बड़े दुखद आश्चर्य में पड़ गये, सोचने लगे, फटे कपड़े भी फटे नहीं हैं, छोटे व फटे कपड़े पहिन रही है, फिर भी गरीब नहीं है, यह कौनसा फैशन है ?

समता बोली – 'अरे बाबूजी ! आप कहाँ खो गये ?'

भोलारामजी बोले – 'कहीं नहीं बेटा। पर बेटी बुरा ना मानो तो एक बात कहूँ?'

स्वीटी बोली – 'कहिये न दादाजी ! आपकी बात बुरी क्यों मानूँगी।'

'देखो बेटी! हमारे माता-पिता कहा करते थे कि कपड़े तन ढ़ँकने के लिए पहने जाते हैं, जिससे कि अपना तन और

दूसरे का मन खराब न हो। बेटा! अपन तो सज्जन परिवारों के हैं, देश दुनिया के लोग टी.वी देख-देखकर क्या-क्या करने लगे हैं, वह सब हमें शोभा नहीं देता। टी.व्ही. पर जो नाटक दिखाये जाते हैं, वे नाटक करनेवाले अभिनेता हमारे आदर्श नहीं हैं। वे सब तो पैसे के खातिर पिटते हैं, पीटते हैं, नाचते हैं, रोते/गाते हैं। वे सब पैसे के लिए कपड़े पहनते हैं और पैसे के लिए उतारते हैं। वे हमारे आदर्श कैसे हो सकते हैं ? हमारे आदर्श तो सीता, द्रोपदी हैं, जिन्होंने अपने शील की रक्षा के लिये सब कुछ दांव पर लगा दिया।'

स्वीटी बोली – 'पर दादाजी ! आजकल नया जमाना है, लड़के-लड़की सब बराबर हैं। हम जो कपड़े पहनते हैं, उन्हें देखकर लड़के अपना मन खराब क्यों करते हैं ? उन्हें तो अपनी मर्यादा में रहना चाहिये। वह क्या करते हैं, क्या पहनते हैं, हम तो कभी उन्हें नहीं टोकते।'

'बेटी! तुम स्वयं तो मर्यादा में रहना नहीं चाहती और लड़कों को उनकी मर्यादा सिखा रही हो। वैसे बेटी आपको जो करना हो/पहिनना हो सो करो, हम क्या कर सकते हैं। पर बेटा एक बात पूछना चाहता हूँ –

'हाँ दादाजी पूछो ना।'

'बेटा ! अगर घर में गुलाबजामुन बनें तो उनमें मक्खियाँ न गिर जायें, इसके लिए क्या करोगी ?

'दादाजी ! सीधीसी बात है गुलाबजामुन ढ़ँककर रखेंगे और क्या ?

बेटा ! यदि हमने ढ़ँक कर नहीं रखे और मक्खियाँ गिर गईं तो तुम्हारी माँ मक्खियों को क्या सजा देगी ?'

वह हँसते हुए बोली 'अरे दादाजी ! मक्खियों को नहीं, माँ तो हमें ही डंडे लगायेगी।'

'नहीं बेटा ! पुराने जमाने में ऐसी गलती होने पर माँ बच्चों को डंडे लगाती थी, अब तो नया जमाना है, क्यों न मक्खियों को सजा दी जाये ?'

'नहीं दादाजी ! ऐसा नहीं होता; हमें ही गुलाबजामुन की सुरक्षा करना चाहिए। यदि हमने रक्षा नहीं की तो इसमें उन मक्खियों का क्या दोष ?'

'बस बेटा ! यही मैं कहना चाह रहा हूँ कि अपने शरीर व शील की सुरक्षा स्वयं करो; यदि हम इन छोटे-छोटे कपड़ों में अपना शरीर दिखाते फिरेंगे, तब तो नये-नये लड़के मक्खियाँ बनकर मंडरायेंगे ही और फिर कोई दुर्घटना हो गई तब दोष

उनका नहीं, अपना ही होगा और नुकसान भी अपना ही होगा। इसलिए बेटा! मेरा तो कहना यही है कि शालीन कपड़े पहनो, जिससे राह चलते लोगों को छेड़खानी का भाव ही नहीं आये।'

'दादाजी ! आप बात तो सही कह रहे हैं, पर....

'सुनो बेटी ! एक बात और, तुम्हारे घर में पिताजी ने कीमती व सुन्दर हीरे की अँगूठी खरीदी होगी तो क्या उसे चौराहे पर रखेंगे या जहाँ चोरों/लुटेरों का खतरा होगा, वहाँ पहिन कर जायेंगे ?'

'नहीं दादाजी ! उसे तो अच्छी तरह संभाल कर रखेंगे, बड़े भाग्य से तो वह मिली है, उसे पिताजी ऐसे ही लुटने को कहीं भी नहीं रख देंगे और जहाँ चोरों का खतरा है, वहाँ पहन कर भी नहीं जावेंगे।'

'तो फिर तुम्हारा शरीर भी सुभग नामकर्म के उदय से बहुत सुन्दर है, कीमती है, इसे सबके सामने दिखाते फिरना अच्छा नहीं है, इसकी सम्हाल / सम्मान / सुरक्षा / सदुपयोग करना अपना ही कर्तव्य है।

बेटा! हम तो ठहरे गाँव के गँवार आदमी, ज्यादा कुछ जानते नहीं, यदि कुछ बुरा कह दिया हो तो माफ करना।'

स्वीटी समझदार थी, उसे भोलारामजी की बातें समझ में आ रहीं थीं, वह बोली – 'नहीं, दादाजी ! आपने कोई बुरी बात नहीं की, आप तो हमारे ही हित की बात कर रहे हैं। फिर हँसते हुये बोली – आपको कल से यह फटे कपड़े पहने हुए मैं नहीं दिखूँगी, मैं भी अब आपकी पसंद के नये कपड़े पहनकर ही आऊँगी। दादाजी ! टी.वी के हीरो सही हीरो नहीं हैं, सच में तो मेरे हीरो आप हैं।'

बेटा! खुश रहो तुम्हारे जीवन में कभी बुरे दिन न आवें – यही आशीर्वाद है।'

जयजिनेन्द्र दादाजी! कहकर स्वीटी प्रसन्नतापूर्वक घर चली गई। ❍

सत्संगति...

सत् स्वभाव के संग में रहना, निश्चय से सत्संग कहा।
जो जन सत् का आश्रय लेते, उनका संग व्यवहार अहा।।
सत् स्वभाव की चर्चा करने, वालों के संग में रहना।
है सत्संग उपचरित भाई! यथायोग्य संगति करना।।
सत् संगति से ही यश वैभव, अरु सुख शांति मिलती है।
सत्संगति करती है उपकृत, सब दोषों को हरती है।।

2

शांति से जीवन जीने की कला ही धर्म...

भोलाराम शास्त्री प्रतिदिन मन्दिर में स्वाध्याय करने लगे थे। रुचिवन्त लोग कम ही थे, फिर भी वह कभी भी संख्या की ओर नहीं देखते थे। उनका सहज-सरल-हँसमुख स्वभाव व प्रवचन शैली सबका मन मोह लेती। भोलाराम शास्त्री भोलेपन व अपनी मुस्कराहट के साथ सदैव प्रसन्न रहते।

शुगर/ब्लडप्रेशर जैसी सर्वत्र उपलब्ध बीमारियाँ भी उनके पास आने से भयभीत रहती थीं, तब फिर अन्य बीमारियों का तो उनसे परिचय ही नहीं था क्योंकि अन्य बड़ी बीमारियों की माता स्वरूप बीमारी शुगर/ब्लडप्रेशर हैं और इनकी जनक है चिन्ता/तनाव/टेन्शन। टेन्शन किस चिड़िया का नाम है, यह भोलाराम शास्त्री जानते ही नहीं थे।

उनका दृढ़ विश्वास था कि अनहोनी होती नहीं, होनी कभी टलती नहीं। तब फिर किस बात की चिन्ता। जो भी होता सहज स्वीकार्य। मन्दिर से जब घर पहुँचते यदि पहुँचते ही भोजन तैयार है तो ठीक और किसी कारण से कुछ देर हो

गई तो भी कोई बात नहीं। उनकी सहजता/सरलता से उनकी बहूरानी भी कभी उनसे भयभीत नहीं रहती, न ही ऐसा लगता कि घर में ससुर रह रहे हैं।

बहू-बेटे के साथ सास-ससुर को कैसे रहना चाहिये, भोलाराम शास्त्री इसका एक सुन्दर उदाहरण थे।

पण्डित भोलारामजी अपने बरामदे में दोपहर में आराम कुर्सी पर बैठे हुये थे, तभी उनके नियमित श्रोता शान्तिलालजी अपनी पत्नी शान्ताबाई के साथ वहाँ आये। शान्तिलालजी रिटायर्ड हो चुके थे, घर में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उच्च शिक्षा प्राप्त बहू-बेटे सभी अपने कामकाज में मस्त। नौकर-चाकर सब कुछ पर; शान्तिलालजी को कोई कमी थी तो बस शान्ति की।

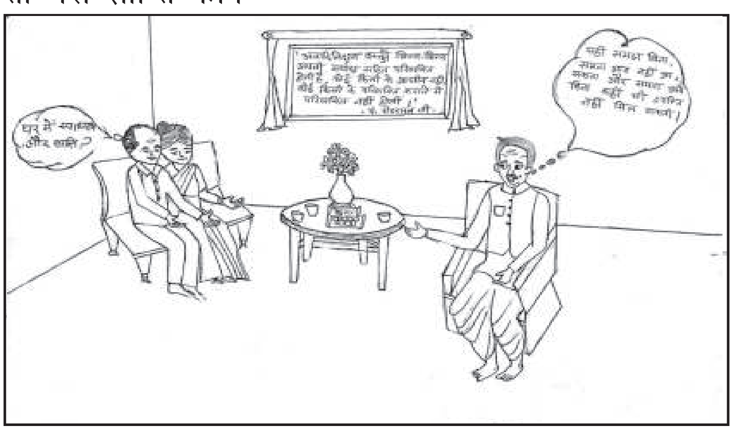

जयजिनेन्द्र करते हुये वे पण्डितजी के पास बैठ गये। पण्डितजी ने उनसे पूछा – 'शान्तिलालजी ! आपका स्वाध्याय तो बहुत अच्छा चल रहा होगा क्योंकि आपको अब कोई काम तो है नहीं, दिमाग भी आपका तेज है, अत: स्वाध्याय में अच्छा मन लगता होगा।'

शान्तिलालजी लंबी सांस लेते हुये बोले – 'अरे पण्डितजी ! घर में और स्वाध्याय? मेरे घर में तो बहुत अशान्ति का माहौल चलता है। बेटे अपने ढ़ंग से रहते हैं, खर्चा तो वह पानी की तरह करते हैं, यह देखकर मन बहुत अशान्त रहता है। हम तो आपके पास आये ही इसलिये हैं कि आप कोई शान्ति का मन्त्र बतायें।'

पण्डितजी बोले – 'क्या आपके बेटे बेरोजगार हैं ?'

'नहीं पण्डितजी ! मेरे दोनों बेटे संजय व अखिलेश तो अच्छी नौकरी कर ही रहे हैं, हमारी तो बहुयें भी नौकरी पर जाती हैं।'

'अच्छा तो क्या उनको कोई गलत लत लगी हुई है ?'

'अरे नहीं, पण्डितजी ! ऐसी कोई बात नहीं है , मेरे बेटे तो इस मामले बहुत ही सुशील हैं।'

'फिर तो जो वह खर्च करते हैं, अपनी कमाई में से ही करते होंगे न?'

'हाँ, पर मुझसे पूछे बिना ही कभी भी कपड़े खरीद लाते हैं, कभी भी गाड़ी बदल लेते हैं, बहुओं को जब देखो गिफ्ट लाते रहते हैं, बहुयें भी अपनी मर्जी से हमारे मना करने पर भी कभी हमें कुर्ता- पाजामा तो कभी इनके लिये साड़ी खरीदती रहतीं हैं, इतना खर्च तो हमसे देखा नहीं जाता।'

'पर शान्तिलालजी ! बेटे-बहू स्वयं कमाते हैं, पढ़े-लिखे समझदार हैं, आपसे कुछ मांगते नहीं हैं। अब उनके अपने शौक हैं। वह खर्चा अपने परिवार ही के खाने-पहनने में तो करते हैं। अब आपसे नहीं पूछते तो इसमें क्या हो गया? उनको लगता होगा कि हर छोटी बात में पापा-मम्मी को क्यों परेशान करें। आप तो इतनी खुशी मनाओ कि धन बढ़ने के साथ उनको कोई गलत लत नहीं लगी।'

शान्ताबाई अभी तक चुप बैठीं थीं, वह अचानक झुंझलाते हुये बोलीं - 'पर पण्डितजी ! कुछ भी कहो लड़के तो लड़के हैं, वे तो कुछ भी करेंगे, पर बहुओं को तो मर्यादा में रहना ही चाहिये। हमारी बहुयें तो कमाने क्या लगीं, अपने आपको घर की मालकिन ही समझने लगीं। मैं जो पहनने,

खाने की बात करती हूँ, वह तो कभी मानती ही नहीं हैं। बड़ी बहू ममता तो ठीक, पर अभी 2 माह पहले शादी होकर आई छोटी बहू सपना भी उसके साथ रहकर बिगड़ गई है, घूंघट डालने की बात तो दूर, दोनों आजकल साड़ियाँ छोड़कर सलवार-सूट पहनने लगीं हैं, मोबाइल पर बातें करती हैं, सुबह 8 बजे सोकर उठतीं हैं, मैं बैठी रहती हूँ और वे फर्राटे से स्कूटर उठाकर मार्केट-मन्दिर चली जातीं हैं। पण्डितजी ! आप कुछ भी कहो पर मुझे तो यह सब अच्छा नहीं लगता। आपकी समता बहू तो कितनी अच्छी है, पर मेरी ममता और सपना तो पता नहीं, किस कर्म के उदय से मुझे मिल गईं ।' शान्तिलालजी भी पत्नी की हाँ में हाँ मिला रहे थे।

पण्डितजी बोले 'अरे! शान्तिलालजी! आप ऐसा क्यों नहीं सोचते कि मेरी बहू भी किसी की बेटी है, वह बड़े ही लाड़-प्यार से पाली-पोसी गई है। यहाँ हमारे घर बिल्कुल अनजान लोगों के पास आई है, उसे सबको जानने-समझने में समय तो लगेगा ही।'

'सो तो है।' शान्तिलालजी धीरे से बोले।

पण्डितजी समझाते हुये बोले कि 'बहू भी तो आखिर बेटी ही है। जब हम अपनी बेटियों की भूलों को नजरअंदाज

कर उसे भला–बुरा नहीं कहते, प्रेम से समझाते ही हैं तो फिर किसी की बेटी से ऐसी अपेक्षा क्यों रखना कि वह हमारे घर सबकुछ सीखकर ही आई होगी। हमारी आज्ञा में ही चलेगी, ऐसा कैसे हो सकता है ?'

'पण्डितजी ! आप कुछ भी कहो, पर बहुओं को अपने सास–ससुर की इच्छा का भी तो ध्यान रखना ही चाहिये। हम तो कभी अपने सासू के सामने ऐसा नहीं करते थे।' शान्ताबाई ने कहा।

पण्डितजी बोले – 'देखो भाई! मैं तो हमेशा से गाँव में रहा, मोटा खाया, मोटा पहना उसी की आदत है, अब मेरे बेटे–बहू मुझे उनकी पसन्द व इच्छा के अनुसार पहनने–बोलने, आने–जाने का कहेंगे तो मैं तो वैसा नहीं कर सकता और जबरदस्ती करेंगे तो बुरा लगेगा और झगड़ा ही होगा, इसी तरह आज के बच्चों को हम अपने ढ़ंग से ही खाने–पीने–पहनने का आग्रह रखेंगे तो वे कैसे मानेंगे ? आग्रह रखना तो अशान्ति का ही कारण होगा।

देखो, मैंने भी तो अपने पिताजी जैसी पगड़ी नहीं लगाई, मैं पगड़ी छोड़कर टोपी पर आ गया तो बेटा धोती–कुर्ता–टोपी छोड़कर पेन्ट–शर्ट पर आ गया और जब बेटे को

स्वतंत्रता है तो फिर बहू भी तो अपने ढ़ंग से रह ही सकती है। उनकी अपनी सोच है, उनकी अपनी आवश्यकता है। हमें तो बस खुशी इस बात की है कि सब कुछ बदलने के बीच में कभी न बदलने वाले अहिंसा/अनेकान्त/स्याद्वाद /अकर्तावाद के सिद्धान्तों से भरपूर जैनदर्शन के प्रति इन सबकी रुचि है, अहिंसा, सदाचार, श्रावकाचारमय जीवन है, साधर्मियों के प्रति वात्सल्य है और हमें क्या चाहिये? मेरे हिसाब से तो यही सोच सही है व शान्ति का मार्ग तो एकमात्र यही है।'

'पण्डितजी ! आप तो भाग्यशाली हैं, जो आपको इतने अच्छे बेटे-बहू मिले, हमारी बहुयें तो जब बिना सिर ढ़ँके सूट पहिन कर निकलतीं हैं तो मुझे तो बहुत शर्म आती है...।'

'देखो शान्तिलालजी! पहले का जमाना और था, आज का जमाना और है, पहले सब महिलायें घर में ही रहती थीं, महिनों गाँव से बाहर नहीं निकलतीं थीं, बाजार नहीं जातीं थीं, नौकरी नहीं करती थीं, गाँव भी छोटे-छोटे होते थे, इसलिये उस समय का रहना, खाना-पीना, सब अलग प्रकार का था, पर आज बहुयें नौकरी कर रही हैं, गाड़ी चला रहीं हैं तो उन्हें सूट पहनना सुविधाजनक लगता है, साड़ी में वह सब

काम करने में उन्हें असुविधा लगती है, इसलिये उन्हें वह पसन्द है तो पहनने दो, आप क्यों परेशान होते हो?'

'वाह पण्डितजी! आप धोती वाले होकर, भारतीय संस्कृति के प्रचारक बनकर भी ऐसी बातें करते हो, आपकी यह बात तो हमें जमीं नहीं।' शान्तिलालजी नाराजगी से बोले।

'देखो भाई! मुझे अपनी भारतीय संस्कृति ही पसन्द है, अपनी भाषा, अपना पहनावा ही पसन्द है, परन्तु यह सब भाषा और पहनावा तो बाहर की पैकिंग है, माल तो हमारे भाव, हमारा धर्म, हमारे विचार हैं। भाषा तो हमारे भावों को दूसरों तक पहुँचाने का साधन है, अब यदि बच्चों के विचार सदाचारमय हैं, वे विनम्र और धर्म के प्रति रुचिवन्त हैं तो वे चाहे अंग्रेजी पढ़ें, चाहे संस्कृत, हम किसी भाषा के एजेण्ट तो हैं नहीं कि हम भाषा के प्रचार के लिए अपने भाव व भव बिगाड़ दें।'

'पण्डितजी ! अंग्रेजी–संस्कृत भाषा की बात तो छोड़ो पर कपड़े तो अपने पुराने समय के ही सही थे, वही पहनना चाहिये ना? यह तो आप भी मानते ही होंगे' – शांताबाई बोली।

'अरे भाई! रही कपड़ों की बात, तो कपड़े अपने शरीर को ढ़ँक कर शील व सुरक्षा के लिये हैं, अब यदि ये दोनों

काम उनके पहने हुये कपड़ों से होते हों तो उनकी पसन्द भी ठीक है, हमें कोई साड़ी की दुकान तो खोलना नहीं है कि वे साड़ी ही पहनें, इसी का आग्रह व प्रचार करते रहें।'

शान्ताबाई झुंझलाते हुये बोलीं – 'ठीक है, जिसे जो पढ़ना है, सो पढ़े व जो पहनना सो पहने उनकी मर्जी, हम बीच में दखल देने वाले कौन होते हैं। पण्डितजी हमें तो कोई आश्रम हो तो बताओ, जहाँ जाकर हम शान्ति से रह सकें। हम तो ऐसे वातावरण में नहीं रह सकते।'

'आपने कहा कि किसी आश्रम में चले जायें तो शांताबाईजी जरा शान्ति से विचार करो, **सही समझ बिना, समता भाव नहीं आ सकता और समता आये बिना कहीं भी शान्ति नहीं मिल सकती।** और यदि सही समझ है, समता व संतोष का भाव है तो फिर कहीं अशान्ति नहीं। हमारे गाँव में एक कहावत चलती है कि मन चंगा तो कठोती में गंगा।' कहावत सुनाकर पण्डितजी अपनी उन्मुक्त हँसी हँसने लगे।

शान्तिलालजी व शान्ताबाई को पण्डितजी की बातें सही लगने लगीं थीं, पर उनका मान उन्हें यह मानने में अभी तक रोड़े अटका रहा था, पर अब धीरे-धीरे कषाय मन्द हो रही थी व सरलता आ रही थी।

‘शान्तिलालजी बोले – पण्डितजी ! आप जो कुछ कह रहे हैं, लग तो सही रहा है।’

‘देखो, शान्तिलालजी ! हम तो ठहरे गाँव के गँवार आदमी, ज्यादा कुछ जानते नहीं, बस एक बात जानते हैं कि जिस तरह शान्ति से जीवन जिया जा सके, राग–द्वेष कषाय भाव न हों और मिथ्यात्व का पोषण न करना पड़े, वैसे जीना चाहिये। क्योंकि कहा है ‘शान्ति से जीवन जीने की कला का नाम धर्म है।’

अरे पण्डितजी साहब ! गँवार तो मैं निकला। अपने आप को पढ़ा–लिखा और उच्च्च पद से सेवानिवृत्त होने के कारण, उसके मद में जीवन जी रहा था, इसीलिये उस अहंकार के कारण ही अशान्त हो रहा था। आपने बिल्कुल सही कहा कि सब अपने अनुसार ही सोचते–करते व जीते हैं, उन्हें वैसा करने का अधिकार भी है।

आपने कुछ दिन पहले ही तो याद कराया था – ‘**अनादि–निधन वस्तुयें भिन्न–भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होतीं हैं, कोई किसी के आधीन नहीं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होतीं।**’

हम सबने तो इन्हें दो लाइन मानकर मात्र याद किया है,

पर पण्डितजी आप तो सुखी होने के उपाय रूपी इस मन्त्र के अनुसार ही जीवन जीते हो, इसलिये आपके जीवन में शान्ति, समता और मुस्कान है और हम अशान्त हैं, पर अब हम भी इस मंत्र को मात्र याद नहीं करेंगे, इस बात को पक्का करेंगे कि बेटे-बहू भी स्वतंत्र द्रव्य हैं, उनका परिणमन उनके लिये, उनके अनुसार है मेरे अनुसार नहीं; उन्हें अपने अनुसार परिणमित कराने का भाव ही अशान्ति का कारण है, बेटे-बहू का परिणमन मेरी अशान्ति का कारण नहीं है। पण्डितजी ! आपसे मिलकर आज मजा आ गया।'

शान्ताबाई अचानक घड़ी की ओर देखते हुये बोलीं 'समझ में आ गया हो तो उठो, घर चलें मेरी बेटी रूपी बहुयें ऑफिस से आने वाली होंगी, थकी होंगी, मैं शाम के भोजन की तैयारी करती हूँ।

'पण्डितजी हंसते हुये बोले - शान्तिलालजी ! शान्ति से जाओ, शान्ति से रहो, तो आपका घर ही शान्ति निकेतन बन जायेगा।'

जयजिनेन्द्र। ❍

विषय-कषायी कार्यक्रम, वीतराग का नाम। धर्म न होवे रंच भी, मात्र पाप का काम।।134।।

3

टाइमपास...

भोलारामजी सुबह-शाम अपना डण्डा लेकर नगर परिक्रमा पर निकलते तो उनके व्यक्तित्व को देखकर परिचित ही नहीं, अपरिचित भी जयजिनेन्द्र दादाजी, प्रणाम दादाजी कहकर उनका अभिवादन करते और वे भी मुस्कराते हुए शुभाशीष देते हुए आगे बढ़ते जाते।

एक दिन भोलारामजी एक घर के सामने से जा रहे थे कि उस घर की बहूरानी नेहा ने जयजिनेन्द्र कहकर उन्हें घर पर

आने का आग्रह किया। भोलारामजी सहजता से उसके घर पहुँचे और कुर्सी पर विराजमान हो गये। जलपान करके उन्होंने पूछा 'बेटा! तुम स्वाध्याय सभा में तो आती नहीं हो, फिर मुझे कैसे पहचान लिया?'

नेहा ने कहा– 'दादाजी ! आपके प्रवचनों के बारे में तो मैंने भी सुना है, पर सुबह बच्चों को स्कूल भेजने और इन्हें भोजन कराकर दुकान भेजने में ही देर हो जाती है और रात्रि में बच्चों को पढ़ाना पड़ता है, इसलिये मैं चाहकर भी नहीं आ पाती, पर मन्दिर में आपको कई बार देखा एवं आपके पोते के साथ मेरा बेटा पढ़ता है, इसलिये आपको मैं तो जानती ही हूँ, पर मेरा बेटा भी आपकी बात करता रहता है क्योंकि आपका पोता स्कूल में आपके बारे में अपने दोस्तों को बताता रहता है।'

भोलारामजी बोले – 'कोई बात नहीं बेटी! अगर तुम दो-चार बहुओं के साथ दोपहर में पढ़ना चाहो तो मैं दिन में भी तुम्हें पढ़ा सकता हूँ।'

नेहा बोली – 'अरे दादाजी ! दिन में तो बिल्कुल टाइम ही नहीं मिलता।'

'क्यों बेटा ! सुबह-शाम तो गृहस्थी के काम में व्यस्त हो पर दिन में क्या करती रहती हो, जो तुम्हें समय नहीं मिलता ?'

बड़े उत्साहपूर्वक नेहा बोली 'दादाजी ! दिन में मैं ब्युटी पार्लर चलाती हूँ ना ?'

भोलारामजी ने बड़े ही भोलेपन से पूछा 'ब्युटी पार्लर... ! ये क्या होता है ? बेटा ! इसमें क्या बेचती हो ?'

नेहा नीची गर्दन करके मुस्कराते हुए बोली – 'दादाजी! इसमें बेचना कुछ नहीं पड़ता। बहू-बेटियाँ आती हैं, उनका शृंगार करती हूँ, कभी-कभी उनके बाल कटिंग करती हूँ।'

यह सुनकर भोलारामजी सोच में पड़ गये। वह सोचने लगे कि यह कैसा शहर है और कितना तेजी से दौड़ रहा है, जो काम गाँव में नाई किया करते थे, वही काम यहाँ आजकल जैनों के घर में होने लगा है। हम जब भी कभी बाल कटवा कर घर में आते तो बचपन में माँ और जवानी में पत्नी पहले नहाकर आने को कहती, तब कहीं घर में कुछ छू पाते थे। पर यहाँ तो यह बहूरानी घर में ही कटिंग कर रही है, क्या शुद्धता रहती होगी? और यह बताते हुये कि यह दूसरों का शृंगार करती है, बड़ा खुश भी हो रही है।

भोलारामजी को चुप देखकर नेहा बोली – 'अरे दादाजी! आप क्या सोचने लगे ?'

भोलारामजी बोले – 'कुछ नहीं बेटा ! मैं यह सोच रहा था कि गाँव में दूल्हा-दुल्हन को उबटन लगाने, महावर आदि लगाकर शृंगार करने और ये बाल काटने का काम तो नाई-नाईन किया करते थे। शहर में आकर बड़ी तरक्की हो गई, जो अब यह काम हमारी समाज में भी होने लगे।'

'अरे दादाजी ! यह कोई खराब काम थोड़े ही है, इसका तो पूरा कोर्स करना पड़ता है, तब कभी यह काम सीख पाते हैं। शादियों के समय तो मेरे यहाँ लाइन लगी रहती है। बड़े-बड़े घरों की बहू-बेटियाँ आती हैं, सीजन में अच्छी कमाई भी हो जाती है।'

भोलारामजी बड़े ही भोलेपन से यह सुन रहे थे, पर यह काम करने के पीछे का तर्क समझ में नहीं आ रहा था। वह बोले - 'बेटा कमाई अच्छी होती होगी, पर तुम्हारी कोई मजबूरी होगी, तभी तो कमाई के लिए यह काम करना पड़ रहा होगा।'

वह हँसते हुये बोली - 'अरे नहीं, दादाजी ! मैं तो दिन भर घर पर रहती हूँ। पप्पू के पापा की दुकान शिवपुरी में सबसे जोरदार चलती है, वे तो दिनभर घर पर आते ही नहीं हैं, तब फिर मैं दिन भर क्या करूँ ? इसलिये समय काटने के लिए ये काम करती हूँ।'

'अरे बेटा! ये क्या कह रही हो, अपने (आत्मा के) शृंगार के लिए समय नहीं और दूसरों के व अपने शरीर को सजाने के लिए समय है, स्वाध्याय के लिए समय नहीं है और समय काटने के लिए बाल काट रही हो। अरे ! बड़े

भाग्य से तो हमें जैनकुल मिला, पुण्योदय से तुम्हें कमाऊ पति मिला, घर में और कोई दुविधा नहीं है, तब और क्या चाहिये ?'

'दादाजी ! पर मेरी मेहनत बेकार नहीं जाती है, जो भी हमारे पास आती हैं, उनका रूप निखार देती हूँ। ऐसा श्रृंगार करती हूँ कि सास भी बहू जैसी लगने लग जाती है' – नेहा हंसते हुए बोली।

'बेटा! यह मनुष्य भव मोह-राग-द्वेष की गंदगी को हटाकर, समता-सरलता-शील-क्षमा-मार्दव आदि गुणों से अपने आपको सजाने के लिए मिला है, शरीर का श्रृंगार करते तो अनंत भव बीत गये। अरे ! जो शरीर मैं नहीं हूँ, जो मेरा नहीं है, उसका श्रृंगार करने से क्या लाभ है ?'

'पर दादाजी ! आप कुछ भी कहो, शरीर ही सही, पर सुन्दर तो हो जाता है।'

' बेटा! शरीर तो मल-मूत्र से ही बना और भरा हुआ है, उसको शुद्ध और सुन्दर कैसे बना सकते हो ? क्या कभी कोयले को साबुन से सफेद कर सकते हो ? नहीं, तो फिर मैल से बने शरीर को सुन्दर कैसे कर सकते हो ? चाहे अपना हो या पराया, इस शरीर के श्रृंगार में समय लगाना मूर्खता ही है। कहा भी है –

'जिसके शृंगारों में मेरा यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता ?'

'दादाजी ! मैं काम नहीं करूँ तो दिन भर टाइमपास कैसे करूँगी, मेरा तो दिन ही नहीं कटेगा' – नेहा मासूमियत से बोली।

'अरे नेहा बेटा! जो समय तुम्हें कर्म काटने की विधि सीखने को मिला, उसे तुम बाल काटने में गँवा रही हो ! यदि बाल ही काटती रहीं तो फिर लाखों वर्षों नरक-निगोद में कटना पड़ेगा। इस बचे हुये समय को स्वाध्याय में लगाओ, देखना कैसे तुम्हारा शृंगार होता है।'

'दादाजी! यह काम मैं नहीं करूँगी तो फिर कौन करेगा? मैंने पैसे खर्च करके इसका कोर्स किया है।'

'अरे बेटा! यह सब काम करने के लिए पहले भी लोग थे, अभी भी सैकड़ों लोग दूसरों को सजाने वाले रहेंगे, पर अपने को सजाने का काम तो स्वयं को ही करना पड़ेगा, उसमें कोई सहयोग नहीं कर सकता, इसलिये मैं तो कहता हूँ – बेटा ! शांति से रहो, स्वाध्याय के लिए समय निकालो। जीवन के लिए धन है, धन के लिए जीवन नहीं, सोचना।

बेटा! मैं तो ठहरा गाँव का गंवार आदमी, जो मन में आया सो अपनी बेटी समझकर कह दिया। बेटा ! कुछ बुरा कहा हो तो माफ करना।'

नेहा ने आँख में आंसू भरते हुऐ कहा कि – 'अरे दादाजी! गँवार तो मैं हूँ, आप तो समझदार हैं, जिसने समय की कीमत समझी है और मुझे समझाई है, अब मैं अपना समय निज आत्मा के शृंगार में लगाऊँगी, शरीर के सजाने में समय खराब नहीं करूँगी, अब मैं अपना जीवन कर्म काटने की कला सीखने में ही लगाऊँगी, ये बाल काटने और दूसरों के शरीर को सजाने का काम आज से ही बन्द।'

भोलारामजी हंसते हुये बोले – 'खुश रहो बेटा। हम तुम्हारी कक्षा लेने के लिए तैयार हैं। अच्छा बेटा ! अब चलूँ, मन्दिर का समय हो रहा है।'

'जयजिनेन्द्र बाबूजी।'

'जयजिनेन्द्र बेटा।'

हंसते हुये भोलारामजी मंदिर चल दिये। ❍

नानाविध शृंगार से, केवल तन चमकाय।
धूमिल होता आत्मा, करते विषय-कषाय।।137।।

4

घड़ी घड़ी में घड़ी जा रही...

भोलारामजी शिवपुरी में अपनी मस्ती में ही रहते। सुबह-शाम चिंतन करते हुये घूमने जाना, अभिषेक-पूजन स्वाध्याय में 2 घण्टे सुबह व रात्रि में सामायिक-स्वाध्याय में करीब 1.30 घण्टा मंदिर में समय व्यतीत होता। दोपहर में भी महिलाओं के लिये 1 घंटा की कक्षा लेने लगे थे, बाकी के समय स्वाध्याय या चिंतन में ही समय व्यतीत होता। घर के किसी भी काम में टोका-टाकी करना उनके स्वभाव में नहीं था। यहाँ तक कि बहू-बेटे किसी पारिवारिक विषय में कुछ पूछते भी तो कह देते – 'बेटा! मैं इस संबंध में कुछ नहीं जानता, तुम्हें जो करना है वह करो, बस इतना ध्यान रखना जिसमें अन्याय होता हो, दूसरे को कष्ट पहुँचता हो, मिथ्यात्व का पोषण होता हो वह काम कभी नहीं करना। न ही ऐसी जगह अनुमोदना करने जाना।'

बेटा कहता 'पिताजी! आपके संस्कारों से इतना तो मुझे पता है, हम कभी भी ऐसा काम नहीं करेंगे, जिससे आपके नाम को या धर्म को बदनाम होना पड़े।'

रविवार का दिन था, एक सज्जन घूमते हुये बगीचे में दिखे। जब वह बेन्च पर बैठे तो उन सज्जन ने उनसे जयजिनेन्द्र किया और पास में ही बेंच पर बैठ गये। पण्डितजी जयजिनेन्द्र करते ही समझ गये कि यह कोई जैन भाई ही हैं, और उन्हें पसीना-पसीना देखकर यह भी समझ गये कि बगीचे के चक्कर लगाकर आये हैं।

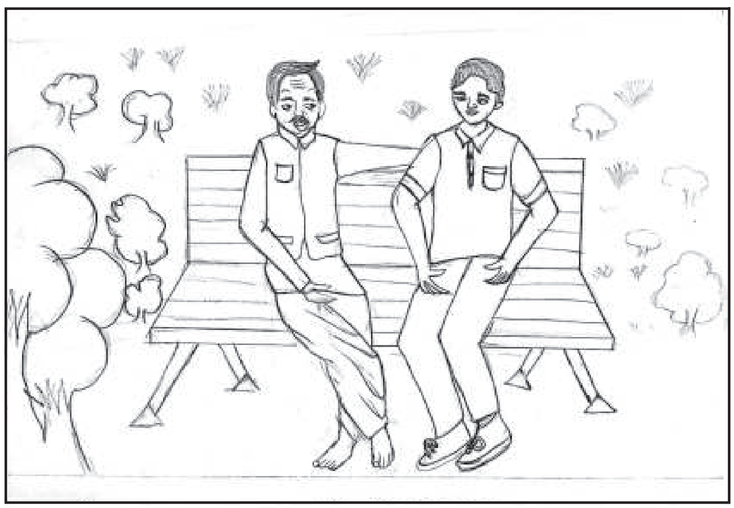

पण्डितजी बोले – 'भईया, मैंने कभी आपको मंदिर में नहीं देखा, इसलिये मैंने आपको पहिचाना नहीं।'

सज्जन ने कहा – 'पण्डितजी ! मेरा नाम महेश है, मैं नगरपालिका में अधिकारी हूँ। मैं करीब 8 बजे सो कर उठ

पाता हूँ, चाय पीता हूँ, मंजन करता हूँ, नहाता हूँ, तब तक ऑफिस जाने का समय हो जाता है और रात में ऑफिस से थककर देर से आता हूँ तो भोजन करके थोड़ा घूमकर सो जाता हूँ। इसलिये मैं मन्दिर आ ही नहीं पाता, तब फिर आप पहचान कैसे सकते हैं।'

पण्डितजी, महेशकुमार की दिनचर्या सुनकर बड़े विस्मित हुये कि यह कैसा जैन है जो 8 बजे सोकर उठता है,चाय पीकर मंजन करता है, जिसे मंदिर आने की फुर्सत नहीं है। रात्रि भोजन का त्याग नहीं है। इस शहर का नाम शिवपुरी किसने रखा होगा ?

महेशकुमार बोले – 'पण्डितजी आप क्या सोचने लगे? अरे ! यह जिंदगी कमाने, खाने–पीने और सोने ही को तो मिली है। मैंने सोच रखा है कि मैं भी जब आपकी उम्र का हो जाऊँगा, तब मंदिर आऊँगा और आपके साथ स्वाध्याय भी करूँगा। पर अभी तो मस्त रहने का समय है।'

'पर बेटा ! एक बात समझ में नहीं आ रही कि जब रोजाना 8 बजे उठते हो तो आज 5 बजे उठकर घूमने कैसे आ गये और 4 किलोमीटर का चक्कर भी लगा लिया।'

'अरे, क्या बताऊँ पण्डितजी ! कल ही डॉक्टर से चैकअप

करवाया तो डॉक्टर ने बताया कि तुम्हारी शुगर बहुत बड़ गई है और ब्लडप्रेशर भी हाई हो रहा है। यदि कंट्रोल नहीं किया तो किडनी पर इफेक्ट हो सकता है। कंट्रोल करने के लिये सबसे बड़ा इलाज मोर्निंग वॉक ही बताया, इसलिये घूमने आ गया। अभी तो 2 किलोमीटर दौड़ना भी है।'

'क्यों बेटा ! डॉक्टर ने ही कहा होगा कि जब तुम 70 साल के हो जाओगे, तब तुम मंदिर जाना।'

'नहीं पण्डितजी ! वह कोई ज्योतिषी थोड़े ही हैं कि मेरी उमर बतायेंगे। और उमर का तो क्या भरोसा, कब किसकी पूरी हो जाये।'

'तुम्हारी उमर तुमसे बिना पूछे थोड़ी पूरी हो सकती है ?'

सज्जन हंसते हुये बोले – 'अरे पण्डितजी ! उम्र भी क्या किसी से पूछकर पूरी होती है।'

'बेटा ! बात तो ऐसी ही है कि उम्र किसी से पूछकर पूरी नहीं होती, पर तुमने कहा न कि जब मेरी उमर के हो जाओगे, तब मंदिर आओगे । इसलिये मैंने सोचा कि उमर ने तुमसे कुछ कहा होगा या तुम्हारी उससे दोस्ती होगी।

बेटा ! जब तुम्हें पता है कि उम्र पूछे बिना ही पूरी हो जायेगी;

कब पूरी होगी, पता नहीं तो फिर किस भरोसे कह रहे हो कि मेरी उमर में धर्म करोगे ? अगर मेरी जितनी उमर न मिली तो फिर क्या करोगे ? फिर तो खाली हाथ ही चले जाओगे ?'

महेशकुमार इस तर्क को सुनकर पण्डितजी की बात ध्यान से सुनने लगे।

पण्डितजी ने बात बढ़ाते हुये कहा – 'बेटा ! शरीर में रोग हुआ तो उसकी चिन्ता में तो तुम 5 बजे उठकर दौड़ने लगे और आत्मा को अनंत दु:ख हो रहा है, मिथ्यात्व-अज्ञानता-असंयम की बीमारी हो रही है, राग-द्वेष-क्रोध-मानरूपी कषायों और विषयों में उलझकर पाप कमा रहे हो, चिंतामय जीवन जी रहे हो, जिसके कारण ढ़ंग से नींद भी नहीं आती और इसी तनाव/चिन्ता में यह शरीर की बीमारियाँ भी हो गईं हैं; उस आत्मा की बीमारी मिटाने के लिये सुबह 7 बजे भी उठकर मंदिर नहीं आ सकते और शरीर की बीमारी मिटाने के लिए सुबह 5 बजे उठ सकते हो, दौड़ लगा सकते हो।'

'पण्डितजी ! घूमने-दौड़ने से ये बीमारी मिट जायेगी, इसलिए क्या करें सुबह उठना जरूरी हो गया।'

'बेटा ! शरीर की बीमारी मिट भी गई तो क्या हुआ, कुछ समय बाद तो यह शरीर ही मिट जायेगा, तब क्या करोगे ?

अचानक आयु पूर्ण हो जायेगी, और पाप के फल में नरक के दु:ख सहन करोगे, तब वहाँ कौन दु:ख बांटने आयेगा ? वहाँ खाने-पीने को दाना नहीं मिलेगा, तब क्या यहाँ के बेटा-बेटी टिफिन लेकर वहाँ आयेंगे ? क्या कभी तुम अपने परदादा आदि की खबर लेने कहीं गये हो।'

'पण्डितजी ! हमें क्या पता कि हमारे परदादा कहाँ गये हैं, जो हम खबर लेने जायें ?'

'यही तो हम कह रहे हैं कि कोई न साथ जायेगा और न ही वहाँ मिलने आयेगा। इसलिये बेटा ! समय निकालोगे तो मंदिर के लिये भी निकल आयेगा, जैसे कि घूमने के लिये निकल आया है। मंदिर और स्वाध्याय के लिये दिया गया समय ही अपना है, बाकी का समय तो दूसरों की सेवा में लगाया हुआ है।

बेटा! बहुत भाग्य से जैनधर्म मिला है। यह लाखों लोगों में 1-2 को मिलता है। गंभीरता से सोचना। मैं तो ठहरा गाँव का गंवार आदमी; जो मन में आता है, सो कह देता हूँ, कुछ बुरा कहा हो तो माफ करना। जाओ बेटा! दौड़ और लगा आओ।'

'पण्डितजी ! माफ तो आप करना। भूल तो मेरी ही है

जो मैं इतना महान जैनधर्म और आप जैसे धर्म समझाने वाले पाकर भी अभी तक लाभ नहीं ले सका।

पण्डितजी ! मैं फटाफट दौड़ लगाकर आता हूँ। मैं आपको आज से ही मंदिर में मिलूँगा। लोग कहते हैं सुबह-सुबह किसी अच्छे आदमी का मुँह देख लो तो दिन सुधर जाता है, पर पण्डितजी ! मैं तो आज ही सुबह उठा और आपका मुँह देखा तो मेरा दिन तो क्या जीवन ही सुधर गया।'

'अरे! अब ज्यादा बात मत कर, जल्दी से दौड़ लगा, नहीं तो मैं डॉक्टर से कह दूँगा।' यह कहते हुए पण्डितजी हंसकर डण्डा घुमाते हुये घर की ओर चल दिये। ❍

नरतन को देने वाली जननी, लोरी गाकर हमें सुलाती है।
पर देखो यह जिनवाणी माता, तो थपकी देकर हमें जगाती है।।
मोह नींद में सोते-सोते, काल अनंत बिताया है।
अब तो जागो चेतनराजा, क्यों दुःखदायी नींद सुहाती है।।

मतलबी है सब ही संसार, किसी को नहीं किसी से प्यार।
मत करो कषायों का व्यापार, न देखो अपनी जीत व हार।।

5

डरे मृत्यु से तदपि टलत न...

पण्डित भोलाराम शास्त्री सदा अपनी मस्ती में मस्त रहते, बाल सुलभ मुस्कान उनका सौन्दर्य था। अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले बच्चे हों या वृद्ध, जैन हों या अजैन, स्त्री हों या पुरुष जो भी मिल जाता, उसी से वे प्रसन्नता के साथ मिलते, उसका हाल-चाल पूछते और समय हो तो दो चार बातें धर्म की कर लेते। कोई भी व्यक्ति उन्हें देखकर न तो भयभीत होता, न ही संकोच करता। उनका व्यवहार ही ऐसा था कि जो भी मिलता, उसे ऐसा लगता मानो वह अपने मित्र से ही बात कर रहा हो।

उनका सभी को सन्देश रहता – यह मनुष्य पर्याय बहुत ही दुर्लभ पर्याय प्राप्त हुई है। इसमें ऐसा कोई कार्य मत करो कि रात में शांति से नींद न आये या किसी से क्षमा मांगने का प्रसंग बने। और यदि गलती हो जाये तो कभी उस गलती को देर तक मत पड़े रहने दो, जितना जल्दी हो, क्षमा मांगकर या दूसरों को क्षमा करके उसकी सफाई कर लो, नहीं तो वह

हृदय में पड़े-पड़े बदबू फैलायेगी, जिससे हमारा ही दम घुटने लगेगा।

एक बार सुबह-सुबह बगीचे में घूमते हुये पण्डितजी गुनगुनाते जा रहे थे -

'अंजुली जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही।।
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मंडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय तृष्णा, तरुण होती जा रही।।'

तभी एक 70 वर्ष के दादाजी हीरालालजी मिले, जय

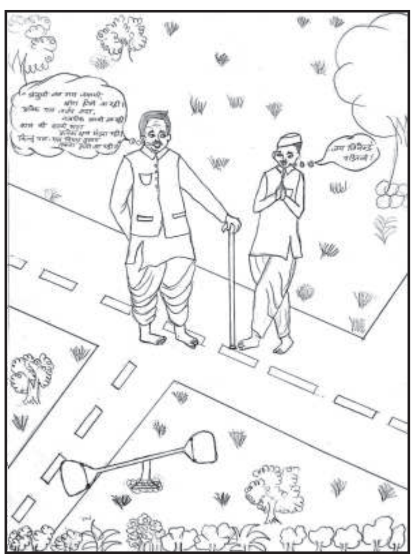

जिनेन्द्र हुई। बगीचे में बेंच पर बैठते हुये पण्डितजी बोले भइयाजी ! आप से एक बात पूछूँ ?'

उन्होंने कहा 'हाँ पण्डितजी ! पूछो न।'

पण्डितजी बोले 'आपने कभी यह सोचा आपकी मृत्यु कब होगी ? कहाँ होगी ? कैसे होगी ?'

यह सुनते ही उन्हें गुस्सा आ गया। 'अरे पण्डितजी ! आप सुबह-सुबह यह क्या बात करने लगे। मरें तो मेरे दुश्मन। अभी मेरी उम्र ही क्या है? अभी तो मेरे पोते की शादी होने वाली है, पड़पोते को गोद में खिलाऊँगा। थोड़े बाल सफेद क्या हो गये कि आप ऐसी बातें करने लगे।

पण्डितजी ! आपने सुबह-सुबह मृत्यु की चर्चा करके अच्छा नहीं किया। अब आप से क्या कहूँ, यह सब अपशकुन की चर्चा है।'

पण्डितजी बोले- 'अरे बाप रे! यह अपशकुन की चर्चा है मुझे माफ करना। मैं ज्योतिष विद्या नहीं जानता। मैं तो ठहरा गाँव का गंवार आदमी, जो दिमाग में आया, सो कह देता हूँ।

पर एक बात बताओ हीरालालजी, कि जो काम हो भी सकता है और नहीं भी; और जो काम हम चाहें या न चाहें, होगा ही। इन दोनों में से हमें किसके बारे में योजना बनानी चाहिये?'

'पण्डितजी ! सीधी सी बात है, जो काम होना ही है, उसके बारे में ही हमें सोचना चाहिये, जिससे कि वह काम अच्छी तरह से हो, हमें आकुलता न हो। जिसके होने की

संभावना कम है, उसके पीछे सोच-सोचकर योजना बना-बनाकर समय गँवाने से क्या फायदा।'

'बहुत बढ़िया भईया, आपने सही कहा। अब एक बात और। जो काम होना ही है, आपके हिसाब से उसके बारे में अच्छी तरह सोचना-विचारना, उसकी चर्चा करना क्या बुरी बात है?'

'अरे ! वह बात बुरी क्यों होगी, हमें सावधान रहकर जितना जल्दी हो सके, उसके बारे में योजना बनानी ही चाहिये।'

'वाह भइया ! सही कह रहे हो आप। अब आप ही सोचो, इस बची जिंदगी में आप पोते की बारात में जाओगे ही, पड़पोते को गोद में खिलाओगे ही, तब तक आप जीवित या स्वस्थ रहोगे ही, इसकी कोई गारन्टी है ? क्या बीच में ही स्वास्थ्य खराब नहीं हो सकता? आप चलने-फिरने लायक ही न रहें क्या ऐसा नहीं हो सकता? क्या हमें बिना बताये ही आयु पूर्ण नहीं हो सकती? इनका जबाब ईमानदारी से दो।'

वह सज्जन शांति से सोचते हुये बोले - 'पण्डितजी ! सही तो यही बात है कि कब तक जीवित रहूँ, कब अस्वस्थ हो जाऊँ, इसका कुछ पता नहीं है। मैं कुछ भी सोचूँ पर इसमें मेरे सोचे अनुसार कुछ नहीं चलेगा।'

'तो भइया ! यह बताओ कि शादी होना, बेटा-बेटी, पोता-पोती होना, उनकी नौकरी लगना, बारात में जाना, पड़पोते को खिलाना, स्वस्थ रहना और मृत्यु का होना, इन कार्यों में कौनसा कार्य है जो होगा ही ?'

वह सोचते हुये बोले-'इन सबमें तो एक मृत्यु ही निश्चित है। कभी हो, पर होगी अवश्य।'

'तो भइया ! इसीलिये तो मैंने पूछा कि जब मृत्यु आयेगी ही तो आपकी क्या तैयारी है ? यह चर्चा बुरी या अपशकुन वाली कहाँ हुई ?

जैसे हमें शिखरजी जाना ही है पर यात्रासंघ की बस कब आयेगी, हमें पक्का पता नहीं है, आज भी आ सकती है और दो दिन बाद का भी कार्यक्रम बन सकता है। ऐसी स्थिति में जिसने अपना सामान बांधकर रखा है, तैयारी पूरी करली है, उसे तो अभी बस आ जाये तो कोई दिक्कत नहीं और दो दिन बाद आये तो भी कोई दिक्कत नहीं, क्योंकि उसकी तो पूरी तैयारी है।

इसी तरह जिसने तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर मैं कौन हूँ ? मेरा क्या स्वरूप है ? इसका निर्णय कर लिया है, उसे चाहे आज मृत्यु आये या कल, उसे कोई दिक्कत है ही नहीं, वह मस्ती में गाता है -

'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।' क्योंकि उसकी पूरी तैयारी है।'

'पण्डितजी ! आप कह तो सही रहे हो।'

'तो भइया स्वाध्याय में आओ और मैं कौन हूँ? मेरा काम क्या है? मैं यहाँ क्यों आया हूँ ? क्या करने से शांति मिलेगी ? इसका निर्णय करलो। मृत्यु को मृत्यु महोत्सव बनाने की योजना बना लो। बस यही कहना है। देखो भइया ! मैं तो ठहरा गांव का....।'

'बस-बस, पण्डितजी ! यह मत कहना कि आप गँवार हैं, गँवार तो मैं हूँ, जो सत्य को असत्य समझ रहा था, मैंने अभी तक ये बाल धूप में ही सफेद किये हैं, अनुभव कुछ भी नहीं है। मेरी समझ में सब आ गया है कि अब शांतिमय जीवन जीने व शान्ति से मरने के लिये मुझे क्या करना है।'

'जयजिनेन्द्र पण्डितजी।'

'जयजिनेन्द्र भइया।'

बगीचे से दोनों चल दिये क्योंकि दोनों का ही मंदिर पहुँचने का समय हो रहा था। ❍

6

काल करे सो आज कर...

पण्डित भोलारामजी मन्दिर से आकर बाहर बरामदे में खुली हवा में बैठे हुये थे। घर में उनका पोता चैतन्य जो कि कॉलेज में पढ़ता था, के मित्र सनत, समकित, अमोल आये हुये थे, उन्होंने चैतन्य से कहा – यार ! अपने दादाजी से मिलवा दो ना। चैतन्य के मित्र सभी जैन ही थे पर मन्दिर नहीं आते थे, इसलिये उसने मित्रों से कहा कि अगर आप दादाजी से मिलोगे तो वह मन्दिर आने व कक्षा में आने के लिये कहेंगे।

मित्र बोले – अरे ! हम मंदिर-वंदिर के चक्कर में नहीं पड़ने वाले, इसमें तो हम किसी की बात नहीं मानते, चलो देखते हैं तेरे दादाजी क्या कहते हैं ? जो भी कहेंगे, हम अपनी अकल लगाकर कोई न कोई उत्तर दे ही देंगे, और जैसे आज तक बचते रहे, वैसे ही देखना आज भी बच निकलेंगे।

चैतन्य मन ही मन प्रसन्न हो रहा था कि आज मेरे मित्र दादाजी से मिलकर निश्चित ही मंदिर तो आने लगेंगे ही। मित्र कितनी भी अकल लगायें पर दादाजी के आगे किसी

की अकल काम नहीं करती, आखिर दादाजी किसके हैं ! यह सोचकर उसे हंसी आ गई।

चैतन्य को हंसता देख सनत बोला 'हंस क्यों रहे हो? क्या हमारी अकल पर भरोसा नहीं है?

चैतन्य ने कहा– 'अरे यार ! ऐसी कोई बात नहीं है, ऐसे ही हंसी आ गई थी। चलो दादाजी के पास चलते हैं।'

चैतन्य अपने मित्रों के साथ वहाँ आया। वह दादाजी से बहुत खुलकर बात करता था और दादाजी भी हंसी-मजाक के साथ चैतन्य से मिलते और समयानुकूल धर्मचर्चा भी करते थे।

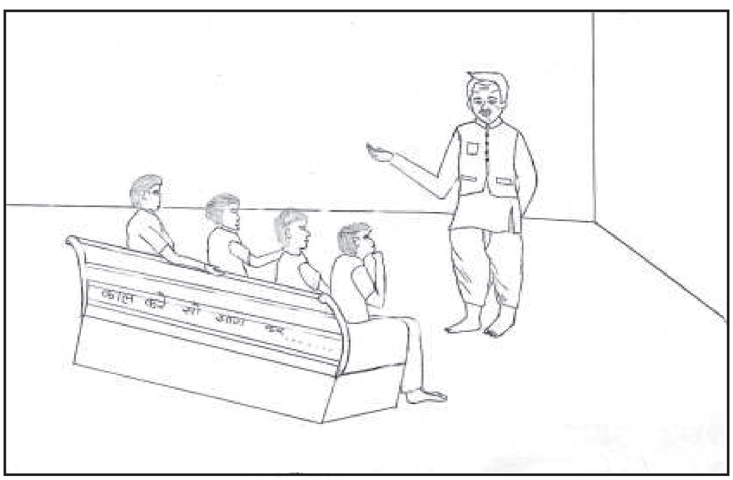

चैतन्य और उसके मित्रों ने आते ही दादाजी के चरण स्पर्श करते हुये जयजिनेन्द्र की।

सभी को प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देते हुये भोलारामजी बोले – 'बेटा ! ये सब कौन हैं? इन पहलवानों का परिचय तो कराओ।'

'दादाजी ! यह मेरे मित्र सनत, समकित और अमोल हैं। ये आपसे मिलने के लिये आये हैं। दादाजी ! आप यहाँ अकेले चुपचाप क्यों बैठे हो ?'

भोलारामजी हंसते हुये बोले 'अरे बेटा! अकेला कहाँ हूँ। मैं तो अपने आचार्यों से फोन पर बात कर रहा हूँ।'

चैतन्य के मित्र आश्चर्य से देखते हुये बोले कि 'दादाजी फोन या मोबाइल तो आपके हाथ में है ही नहीं; फिर फोन पर कैसे बात कर रहे थे ?'

दादाजी बोले 'बेटा! जब तुम इस माचिस की डिब्बी जैसे मोबाइल से बात करते हो, तब तुम्हारे फोन का तार दिखता है क्या? नहीं ना। क्योंकि वह बिना तार का मोबाइल फोन है और मेरे फोन का तार तो क्या फोन ही बिना दिखने वाला है। मैं अपने आचार्यों द्वारा बताये गये सिद्धान्तों को समझ रहा था। इस में किसी बाहर के फोन की आवश्यकता ही नहीं है।'

यह बात सुनकर सभी मित्र हंसने लगे।

पण्डितजी ने चैतन्य से कहा– 'बेटा ! तुम्हारे ये मित्र तुम्हारे साथ रविवारीय कक्षा में तो आज तक कभी दिखे नहीं, ये लोग कक्षा में क्यों नहीं आते?'

यह सुनते ही सब समझ गये कि अब पण्डितजी मंदिर आने के लिए ही बात कर रहे हैं। सब सजग हो गये कि कुछ भी हो जाये अपने को इनकी बातों में नहीं आना है।

चैतन्य जवाब दे, उससे पहले ही अमोल बोला– 'दादाजी! हम तो इसलिये मन्दिर नहीं आते क्योंकि मन्दिर में लोग बात-बात पर झगड़ते हैं। कभी अध्यक्ष-मंत्री झगड़ते हैं तो कभी पूजन करने वाले, कई स्थानों पर तो प्रवचनकार पण्डित ही झगड़ते हैं कि प्रवचन कौन करेगा ? मानो मंदिर धर्म के स्थान न होकर अपनी इज्जत बढ़ाने के स्थान बन रहे हैं, इसलिये हम मन्दिर नहीं आते।'

अमोल की तार्किक बात सुनकर सब मित्र मन ही मन उसकी अकल पर प्रसन्न हो रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो पहली ही बॉल पर छक्का लगा दिया हो।

पण्डितजी गंभीरता से बोले– 'हाँ बेटा! यह बात तो तुम सही कह रहे हो, मंदिर जो कि धर्मस्थान हैं, उसे कुछ लोग

युद्धस्थान बना देते हैं। धर्म की चर्चा न करके धन के लिये उलझने लगते हैं, अपनी मान बढ़ाई के लिए ही बहुत से लोग काम करते हैं। ऐसे कार्य करना बहुत गलत बात है। ऐसे वातावरण में मन्दिर में मन नहीं लग सकता। तुम्हारी शिकायत बहुत हद तक सही है। मैं भी इसे अच्छा नहीं समझता, पर सारी समाज को कौन बदल सकता है?

आचार्यों ने भी कहा है–

'अन्य स्थाने कृतं पापं, धर्म स्थाने विनश्यति।
धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति।।'

अर्थात् अन्य स्थान घर–दुकान आदि में किये गये पाप तो मन्दिर में आकर मिटा सकते हैं परन्तु जो मन्दिरों, तीर्थों पर ही पाप करते हैं, वह तो वज्रलेप जैसे हो जायेंगे, उनका मिटाना बहुत मुश्किल हो जायेगा। इसलिये बेटा ! मन्दिरों को तो धर्मस्थान ही बने रहने देना चाहिये।'

अचानक उन्होंने विषय बदलते हुये कहा – 'चलो छोड़ो मंदिर और कक्षा की बात। बेटा! ये तो बताओ कि तुम्हारे कॉलेज में पढ़ाई तो अच्छी चल रही है?'

(सभी मन ही मन प्रसन्न होने लगे कि अमोल ने मन्दिर नहीं आने का तर्क देकर दादाजी को चुप कर दिया और

मुस्कराते हुये चैतन्य की ओर देखा। जिसका भाव था कि देख, हमने तेरे भोले दादाजी को बहका दिया न !)

'जी दादाजी ! हमारी पढ़ाई तो बहुत अच्छी चल रही है, अब तो परीक्षायें आनेवाली हैं।'

'बहुत अच्छा, बेटा! खूब मन लगाकर पढ़ो। बेटा! मैंने सुना था अभी कुछ दिन पहले तुम्हारे कॉलेज में लड़के झगड़ पड़े थे और चुनाव के चक्कर में गोली तक चल गई थी?'

समकित बोला 'अरे, हाँ दादाजी ! कॉलेज में कुछ लड़के तो केवल राजनीति व मस्ती करने ही आते हैं, विद्या के स्थान को ये लड़के अपनी गंदी सोच से राजनीति व झगड़े का अड्डा बना देते हैं।'

'और कुछ दिन पहले तुम्हारे प्रोफेसर भी झगड़ पड़े थे। मुझे तो इस चैतन्य ने ही बताया था।'

'दादाजी ! उन लड़कों को भड़कानेवाले यह प्रोफेसर ही तो होते हैं जो अपनी पार्टी की राजनीति इन लड़कों के माध्यम से चलाते हैं, इसलिये वे भी बांह चढ़ाये घूमते रहते हैं। आजकल महाविद्यालयों का वातावरण बहुत बिगड़ गया है।' सनत ने कहा।

भोलारामजी बहुत ही भोलेपन से बोले 'यह बात तो है। जमाना बहुत खराब हो रहा है पर हम उसमें क्या कर सकते हैं। क्यों बेटा ! तुम्हारे पापा तो दुकान करते हैं न?'

'हाँ दादाजी! कपड़े की बड़ी दुकान है।' समकित बोला।

पण्डितजी कुछ याद करते हुये बोले-'अरे हाँ! कपड़ा बाजार में भी तो अभी कुछ दिन पहले कोई गुण्डागर्दी हो गई थी न! क्या हुआ था? चाकू-वाकू चल गई थी, बाजार भी बन्द रहा।'

'हाँ दादाजी ! क्या करें? पुलिस सब बदमाशों से मिली रहती है, उनका ही राज चलता है। दो दिन बाजार बन्द रखा, तब वे बदमाश पकड़े गये।'

(समकित अमोल, सनत समझ रहे थे कि वे पण्डितजी के चंगुल से बच गये पर चैतन्य को विश्वास था कि दादाजी का एक सूत्री कार्यक्रम है, जो मिले उसे किसी भी तरह स्वाध्याय से जोड़ना। आज तक तो वह अपने मिशन में असफल हुये नहीं पर वह देख रहा था कि आज के इन जवानों को दादाजी किस तरह पराजित करते हैं।)

'क्यों बेटा! जब तुम्हारे कॉलेज में छात्रों के इतने झगड़े

होते हैं, प्रोफेसर भी आपस में लड़ते हैं, तब तो तुमने कॉलेज जाना बन्द कर दिया होगा ?'

'नहीं, दादाजी ! हमें तो पढ़ने से मतलब, हमें उन लड़कों और उन प्रोफेसरों से क्या लेना देना, उनका फल वे भोंगेगे। हमें तो अपने काम से मतलब। अगर कॉलेज नहीं जायेंगे तो उनका तो कुछ बिगड़ना नहीं है, हमारा ही भविष्य खराब हो जायेगा।' अमोल बोला।

'शाबास बेटा ! तुम्हारी यह सोच बिल्कुल सही है। हमेशा ऐसा ही पॉजेटिव सोचना चाहिये।

बेटा समकित ! बाजार में झगड़ा हुआ था तो अब तो तुम्हारे पिताजी ने तो दुकान वहाँ से बन्द कर दी होगी?'

'अरे दादाजी! आप भी बच्चों जैसी बातें कर रहे हो ! ऐसे दुकानें बन्द करने लगें तो किसी भी बाजार में दुकान ही नहीं कर पायेंगे। बाजार में तो क्या, ऐसे झगड़े घर तो में भी हो जाते हैं, तो कोई घर तो नहीं छोड़ देता, यह सब तो चलता ही रहता है।' समकित ने समझदार बनते हुये कहा।

'बेटा ! कुछ भी कहो, तुम हो तो बहुत होशियार।' फिर हंसते हुये कहा– 'तूने शहर का पानी पिया है, मैं तो ठहरा गाँव का गँवार आदमी; इसलिये मैंने इतनी अकल नहीं लगाई।

तूने बिल्कुल सही कहा – छोटे-मोटे झगड़ों से कॉलेज, बाजार, घर थोड़े ही छोड़े जाते हैं।' समकित अपनी प्रशंसा सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था।

इतने में पण्डितजी बोले 'पर बेटा! एक बात समझ में नहीं आई कि कॉलेज में लड़के व प्रोफेसर झगड़ते हैं, फिर भी तुमने कॉलेज नहीं छोड़ा 'अपने काम से काम' को मानकर पढ़ाई पर ध्यान दिया। बाजार में झगड़े हुये पर तुम्हारे पिताजी ने दुकान बन्द नहीं की, सावधानी रखते हुये दुबारा चालू कर दी। तुमने कहा – घर पर भी झगड़े होते हैं तो घर नहीं छोड़ते, तो फिर बेटा ! मन्दिर में कभी झगड़े हो भी गये हों तो इस कारण से तुमने मन्दिर आना क्यों छोड़ दिया ? यहाँ क्यों नहीं सोचा कि उस झगड़े का फल उनको ही मिलेगा, हम क्यों मंदिर/स्वाध्याय छोड़ें। इसमें तो अपना ही बुरा होगा, हमें तो अपने दर्शन/पूजन/स्वाध्याय करने से मतलब; जो न समझें तो न समझें। कुछ नासमझों के चक्कर में तुम्हारे जैसे समझदारों ने मन्दिर आना क्यों छोड़ दिया ?

बेटा ! तुम सब समझदार हो, घर जाकर सोचना कि तुमने सही किया या गलत ?'

सारे लड़के जो भोलारामजी को भोला समझ रहे थे,

वे उनकी तर्क शक्ति के सम्मुख एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

सनत भावुक होते हुये बोल पड़ा – 'अरे दादाजी ! घर जाकर क्या सोचना। हमारी समझ में आ गया है कि मन्दिर न जाने के संबंध में हमारी सोच गलत थी। हमें औरों से क्या लेना–देना हम तो मन्दिर आयेंगे, स्वाध्याय करेंगे; जिसे जो करना हो, उसकी वह जाने। क्यों दोस्तो ?' सभी ने हाँ में गर्दन हिला दी।

'शाबास बेटा। हमें खुशी है कि मेरे चैतन्य के तुम्हारे जैसे समझदार दोस्त हैं। बेटा! तो रविवार को कक्षा में आओगे ना ?'

'दादाजी पक्का, हम तो आयेंगे ही। अपने अन्य मित्रों को भी लायेंगे।' अमोल ने कहा।

पण्डितजी हंसते हुये बोले 'ओखे। जयजिनेन्द्र।'

चैतन्य को अपने भोले पर प्यारे व समझदार दादाजी पर गर्व हो रहा था। सब हंसते हुये खेलने चले गये। ❍

धर्म मार्ग जो ले चले, साधर्मी कहलाय।
धर्म पत्नी अरु धर्म पति, चलें मार्ग सुखदाय।।151।।

धर्म कब ?...

भोलारामजी प्रतिदिन सुबह बगीचे में घूमने जाते थे। मस्ती के साथ डण्डा घुमाते हुये कभी बुजुर्गों के साथ धीरे-धीरे बात करते हुये चक्कर लगाते तो कभी बच्चे मिल जाते तो उनके साथ चहलकदमी करने लग जाते। आज सुबह जैसे ही घूमने के लिए बगीचे में प्रवेश किया तो कॉलेज के छात्र अमित, सुमित, अक्षय और दीपक मिल गये जो कि प्रतिदिन बगीचे में घूमने के कारण अब तक परिचित हो चुके थे। छात्रों ने आदर के साथ जयजिनेन्द्र किया। पण्डितजी ने जयजिनेन्द्र करते हुये स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का शुभाशीष भी दिया।

पण्डितजी हंसते हुये उन युवाओं से बोले - 'चलो बच्चो! आज मैं भी तुम्हारे साथ दौड़ लगाऊँगा, देखता हूँ कौन आगे निकलता है ? बच्चो ! यदि तुम पीछे रह गये तो तुम बुड्ढे और मैं जवान कहलाऊँगा। ओखे-रेड्डी।'

बच्चे समझ ही नहीं पाये कि क्या कहना चाहिये, क्या करना चाहिये। इतने में तो भोलारामजी धोती पकड़ कर

दौड़ने लगे। उन्हें दौड़ता हुआ देखकर युवावर्ग भी दौड़ पड़ा। बगीचे का एक चक्कर पूरा करते ही पण्डितजी खांसने लगे, उनकी सांस चड़ गई। वह वहीं खांसते हुये बेंच पर बैठ गये। सभी युवा भी उनके पास ही दौड़ कर आ गये। सभी पूंछने लगे – दादाजी ! क्या हुआ, कोई दिक्कत तो नहीं।

पण्डितजी लम्बी सांस लेते हुये बोले 'अरे बच्चो! मैं अब सच मैं ही बूढ़ा हो गया हूँ। जब मैं तुम्हारी उम्र का था, तब गाँव में 5 किलोमीटर लगातार दौड़ा करता था।'

'सभी एक साथ बोल पड़े – 5 किलोमीटर ?'

'क्यों, क्या ज्यादा है? अरे ! उसके बाद तो हम कबड्डी खेलते थे, कभी दण्ड पेलते थे।'

अमित बोला 'दादाजी ! हम तो 2 किलोमीटर तक भी नहीं दौड़ सकते।'

पण्डितजी हंसते हुये बोले–'अरे बेटा! हम तो अंग्रेजों के जमाने के जवान हैं। लेकिन बच्चो अब तुम्हारा जमाना है, तुम्हारे सिर पर पढ़ाई का बोझा है। नई–नई किताबें पढ़ते हो और नये–नये काम आप लोग करते हो। हमारा जमाना शरीर मजबूत करने का था, आपका जमाना दिमाग मजबूत करने का है। आज इसकी ही जरूरत है।'

युवावर्ग पण्डितजी की उन्नत सोच जानकर दंग रह गया।

पण्डितजी ने अचानक पूछा – 'बच्चो! आप बगीचे में तो रोजाना दिखते हो पर मन्दिर में नहीं दिखते। क्या आप लोग दर्शन करने मन्दिर नहीं आते हो?'

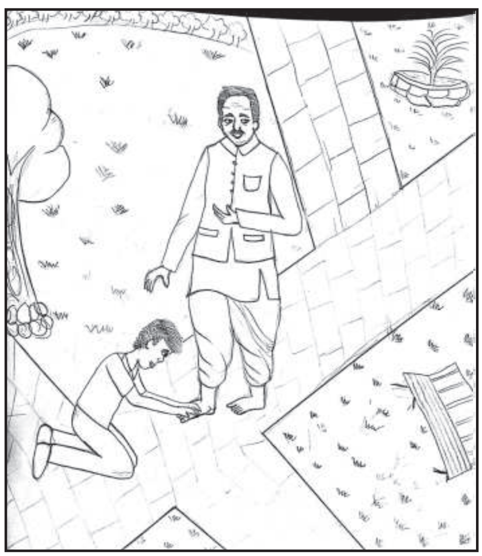

सभी इस प्रश्न को सुनकर चुप रह गये क्योंकि उनमें से कोई भी मन्दिर नहीं जाता था। पर अपनी इज्जत बचाने और बुद्धि का तेज बताने के लिए उनमें से सुमित बोला– 'दादाजी! हम पाप ही नहीं करते तो मन्दिर क्यों जायें। मन्दिर तो वे जाते हैं जो पाप करते हैं।'

पण्डितजी उसका उत्तर सुनकर हंसते हुये बोले 'शाबास बेटा ! आपने सही जबाब दिया। आप लोग कोई पाप नहीं करते, इसलिये मन्दिर आने की कोई जरूरत नहीं है।

पाप तो हम करते हैं – दूसरों को सहयोग करते हैं, बच्चों को पढ़ाते हैं, स्वाध्याय कराते हैं, कभी बेईमानी का काम नहीं किया, माता–पिता की सेवा की, कभी पड़ोसी से ईर्ष्या नहीं की, यह सब पाप ही तो है ? सच कहा बेटा ! पाप तो मैं करता हूँ, इसीलिये तो मैं दोनों समय मन्दिर जाता हूँ।'

'नहीं–नहीं, दादाजी ! आप कहाँ पाप करते हैं, आप तो धर्म के ही काम करते हैं। मेरे कहने का मतलब यह नहीं था। आप गलत समझ गये।' घबराते–शरमाते सुमित बोला।

पण्डितजी हंसते हुये बोले–'अरे बेटाराम! तो यह तो बताओ कि पाप या पुण्य कहते किसे हैं ? किसी का दिल दुखाना, बुरा चाहना, झूठ बोलना, किसी भी प्रकार से किसी का भी धन या वस्तु चुराना या उसे प्राप्त करने की भावना भाना, राग–द्वेष बढ़ाने वाली, खाने–पीने की ही बातें करना, लड़कियों के चित्र देखना, उनके बारे में सोचते रहना, आपस में बैठकर उनके संबंध में ही बातें करना। बाजार में या होटलों में जाकर जिनके बनने में, रखने में असंख्य जीवों की हिंसा होती है, ऐसी वस्तुओं को वह भी रात्रि में जाकर खाना, पार्टियों में नाचना–गाना, अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करना – यह सब क्या है पाप या पुण्य ?'

अक्षय बोला – 'यह सब तो पाप ही है।'

‘तो फिर सोचो बेटा ! आप रोजाना क्या करते हो ? हो सकता है किसी की हत्या न करते हो, हो सकता है जैन हो इसलिये मांस-मदिरा का सेवन न करते हो, पर क्या इतने में सब पाप छूट गये ?

धन व पद प्राप्त करने के लिए पढ़ाई करते रहना, मोबाइल पर बातें करते रहना, वाट्सएप पर लगे रहना, घूमना- फिरना आदि क्या यह सब आप लोगों की दृष्टि में पुण्य है ?’

सभी एक दूसरे का मुँह देखने लगे क्योंकि उन्होंने इस तरह से तो कभी सोचा ही नहीं था। उन सबको चुप देखकर पण्डितजी बोले ‘अरे बच्चो! पुण्य तो उसे कहते हैं जो हमें पवित्र करे, हमारे जीवन में निर्मलता लाये। अब आप लोग सोचो कि आप 24 घण्टे में जो काम करते हो, जो विचार करते हो, सुनते हो, सोचते हो, देखते हो - क्या उन सबसे विचारों में समता/शान्ति आती है या राग-द्वेष-ईर्ष्या-तृष्णा-प्रतियोगिता-चिन्ता-तनाव पैदा होता है। यदि यही सब कुछ मिलता है तो फिर यह पुण्य कैसे हुआ ? और यदि यह सब पुण्य नहीं है तो धर्म तो हो ही नहीं सकता क्योंकि धर्म तो वीतरागभाव को कहते हैं। तो जब धर्म भी नहीं, पुण्य भी नहीं तो फिर विचार करो कि हम 24 घण्टे क्या करते हैं ?’

'दादाजी! यदि इतनी गहराई से ऐसा सोचें, तब तो हम सब पाप ही करते हैं।' दीपक ने कहा।

'हाँ बेटा! सही कहा, हम टी. वी. देखने, अखबार पढ़ने, धन संग्रह करने/कराने, खाने-पीने आदि के जो भी भाव/विचार करते हैं, वे सब पाप भाव ही हैं।'

'तब मन्दिर आना ही पुण्य हुआ, इसलिये मन्दिर तो आना ही चाहिये।'

'बेटे ! मन्दिर आना ही पुण्य नहीं है, वीतरागी के पास वीतरागता के लक्ष्य से आकर उनके दर्शन-पूजन, उनकी वाणी का श्रवण-चिंतन, उनके बताये मार्ग पर स्वयं चलना व उनके बताये मार्ग पर चलनेवाले नग्न दिगम्बर मुनिराजों का अनुसरण करना, अहिंसामयी धर्म का तन-मन-धन व कृत-कारित-अनुमोदना से प्रचार-प्रसार की भावना होना आदि सभी भाव, पुण्य भाव हैं। इन सबको समझने के लिए मन्दिर आना चाहिए और स्वाध्याय करना चाहिये।'

अक्षय बोला - 'पण्डितजी! यह सब काम तो बुढ़ापे में करने लायक हैं, हमें अभी से क्यों मन्दिर में बैठाते हो ?'

पण्डितजी हंसते हुये बोले 'बहुत सही कहा बेटे आपने, जब चला नहीं जाय, सुना नहीं जाये, देख नहीं सको, याद

नहीं रख सको, दुकान से बेटा फालतू समझ कर घर भगाये और बहू बेकार का समझ कर मन्दिर भगाये, ऐसी दशा में एक ही काम बचा कि आप धर्म कर लो। पर बेटा ! ऐसे थके दिमाग से क्या स्वाध्याय हो पायेगा, कुछ समझ सकेंगे ? और जब समझ ही नहीं सकेंगे, तब अनुकरण कैसे कर पायेंगे।'

भोलारामजी ने बड़े ही भोलेपन से पूछा 'बेटा! अच्छा एक बात बताओ, तुम विवाह कब करना चाहते हो ? जवानी में या बुढ़ापे में ?'

सब एक साथ बोल पड़े 'दादाजी ! विवाह तो जवानी में ही किया जाता है, इसलिए हम भी जवानी में ही विवाह करना चाहते हैं।'

पण्डितजी मजाक करते हुये बोले 'वाह बेटा! इस संसार की वधु से शादी जवानी में और मुक्तिवधु से बुढ़ापे में।' वह हंसते हुये बोले 'बेटा! अगर मुक्ति वधु बुढ़ापे में सामने आ गई तो तुम्हारी शकल देखकर ही भाग जायेगी। और तुम तो उसे देखने के लिए अपना चश्मा ही साफ करते रहोगे, तब तक वह किसी जवान के गले में वरमाला डाल देगी।'

देखो बेटा संस्कृत में एक सुभाषितकार ने कहा है –

अजरामरवत् प्राज्ञः, विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्।।

मैं अजर-अमर हूँ, दीर्घजीवी हूँ - ऐसा सोचकर तो विद्या व धन कमाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं सोचकर उल्टा सोचोगे कि पता नहीं कब मौत आ जाये, कहीं सोते-सोते ही मर गये तो क्या होगा? ऐसी सोच से कभी पढ़ाई नहीं कर सकते और धन नहीं कमा सकते।

और मौत ने मेरी चोटी पकड़ रखी है, कभी भी चोटी खींच सकती है - ऐसा सोचकर धर्म में लगना चाहिये। यदि ऐसा सोचोगे कि धर्म बाद में करेंगे तो कभी भी इस देह को छोड़कर जाना पड़ सकता है, तब हम धर्म के बिना खाली हाथ ही चले जायेंगे।

बेटा ऐसा मानकर मत बैठे रहो कि हमारी तो लम्बी आयु बाकी है, बुढ़ापे में धर्म कर लेंगे। पर बेटे सबका बुढ़ापा आयेगा ही, ऐसा कहाँ निश्चित है? कही बीच में ही आयु पूर्ण हो गई तो फिर हम क्या करेंगे? इसलिये बेटा ! आपको जो भी पढ़ाई करना हो, काम करना हो, वह करो, पर स्वाध्याय भी जरूर करो। स्वाध्याय से ही सब समस्याओं के समाधान होते हैं।'

घड़ी की ओर देखते ही खड़े होते हुये पण्डितजी बोले

'धत् तेरे की, हम तो ठहरे बेटा गाँव के गंवार आदमी, देखो! हमने तुम्हारी सुबह खराब कर दी, तुम्हारा घूमना भी मेरे कारण रह गया, क्षमा करना। बेटा ! मेरा तो मन्दिर का टाइम हो रहा है, मैं मन्दिर जाता हूँ, तुम सब आराम से घूम कर आओ।'

'नहीं दादाजी ! अब आज हम नहीं घूमेंगे क्योंकि अब हमारा भी समय हो गया?'

'अरे बच्चो! तुम्हारे कहाँ जाने का समय हो गया? सॉरी मैंने तुम्हारा समय खराब किया।'

सभी एक दूसरे की आँखों में देखते व हंसते हुये बोले 'नहीं दादाजी हमारा पहले से कहीं जाने का नहीं था, अभी-अभी अपॉइंटमेट लिया है और वहाँ तो अब रोजाना जाना पड़ेगा।'

'अरे! बेटा कहाँ ?'

'दादाजी ! पापों से बचने, पुण्य करके धर्म समझने व प्राप्त करने के लिए मन्दिरजी। दादाजी ! आप चलिये, हम भी तैयार होकर आते हैं मन्दिरजी। जयजिनेन्द्र।'

'जयजिनेन्द्र! खुश रहो बेटे।'

सभी प्रसन्न मुद्रा में अपने-अपने गन्तव्य की ओर चल दिये। ❍

8

पर की आस – अंधविश्वास...

धीरे–धीरे स्वाध्याय सभा में श्रोताओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। मात्र संख्या ही नहीं बढ़ रही थी, रुचि व तत्त्व के प्रति पकड़ भी बढ़ रही थी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि श्रोताओं में युवाओं की संख्या बढ़ रही थी, जिसे देखकर समाज का नेतृत्व बहुत हर्षित हो रहा था और पण्डितजी के सहज आगमन को अपना सौभाग्य समझ रहा था।

पण्डितजी अपने भोलेपन–सरलता व मधुरता के कारण आबाल–वृद्ध सभी के प्रिय हो रहे थे। सभी के योग्य कोई न कोई गतिविधि चले और नये लोग जुड़ें, इसका प्रयास वे निरन्तर करते थे। सामूहिक पूजन, साप्ताहिक गोष्ठी, रविवार को युवावर्ग की मुख्यता से कक्षायें संचालित होने लगीं थीं नगर में धर्ममय वातावरण बना हुआ था।

एक दिन प्रात:काल की सभा में एक नये श्रोता ने पण्डितजी से कहा – ‘पण्डितजी ! मेरा एक निवेदन है।’

पण्डितजी– ‘अरे! डर क्यों रहे हो भाई! पूछो न, जो भी

पूछना हो। आप अभी एक सप्ताह से ही स्वाध्याय में आ रहे हो, अगर कोई बात समझ में न आई हो तो अवश्य पूछो।'

श्रोता बोला – 'पण्डितजी! प्रवचन तो हमें धीरे-धीरे समझ में आने लगा है, आप इतनी सरलता से समझाते हैं कि आपकी बात बच्चों के भी समझ में आ जावे। आप पण्डितजी हैं, ज्ञानी हैं, मैं तो आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आजकल मेरी दुकान अच्छी तरह से नहीं चल रही है। घर में पत्नी भी बीमार रहती है, बच्चे की शादी नहीं हो रही है। आप हमारे घर चलकर देख लेते, यदि मकान में कोई वास्तुदोष हो या

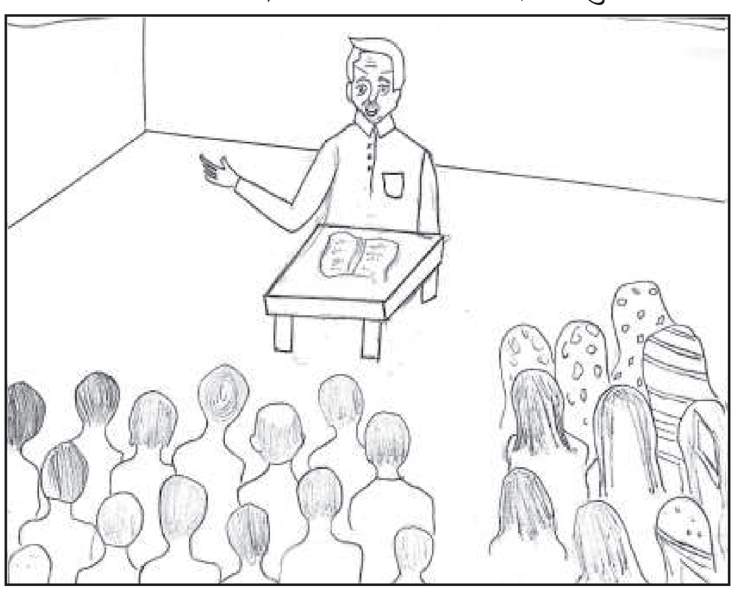

कोई मंत्र-तंत्र करना हो या कोई विधान कराने से सब ग्रह शान्त हो जायें तो आप बताने की कृपा करें।

मैंने पहले एक मेले में एक पण्डितजी से इसके बारे में पूछा था तो उन्होंने कहा था कि तुम्हारे ऊपर शनीचर का प्रकोप है, इसलिये घोड़े की नाल की अंगूठी पहन लो, तब ठीक हो जायेगा, पर तीन साल हो गये अंगूठी पहने, अभी तक तो कोई असर नहीं हुआ। अब आप ही मुझे राय दें मैं क्या करूँ ?'

पण्डितजी को उसकी बात सुनकर जगत में छाये अंध-विश्वासों और अज्ञानता को जानकर बहुत ही खेद हुआ। उन्हें लगा कि जिनवाणी के स्वाध्याय बिना जीव कैसे-कैसे प्रपंचों में फंस जाता है। मोहांधकार कितना गहरा है और इसे दूर करने के लिए जिनवाणी का प्रचार-प्रसार कितना आवश्यक है। सभी को लौकिक शिक्षा और भोगों के साधन एकत्र करने के लिए कितनी चिन्ता है। माता-पिता से प्राप्त धन-पद-प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यह मनुष्य क्या-क्या नहीं करता ? परन्तु उन्हीं से प्राप्त धार्मिक संस्कारों को ग्रहण करने व आगे बढ़ाने की रंचमात्र चिन्ता नहीं है, यह काम समाज के भरोसे पर छोड़ दिया गया है और समाज का नेतृत्व भी बाजार की तरह मंदिरों में बोली लगाकर मात्र धन कमा रहा है । घर के

पैसे को बैंक में जमा कर ब्याज खा रहा है और मंदिर का पैसा भी पिछले वर्ष कितना था ? इस वर्ष कितना ब्याज मिला ? वही सोचने में लग रहा है। बैलेंस सीट देखकर ही अध्यक्ष-मंत्री को सफल घोषित किया जा रहा है। अरे ! भले ही सारा पैसा समाप्त हो जाये पर साहित्य की सुरक्षा में, शिविर संचालन में, समाज में साधनहीनों की सहायता करने में कितना लगा, यह देखा जाना चाहिये। यह समाज कब जागृत होगा ?

पण्डितजी को विचारमग्न देखकर वह श्रोता बोला 'अरे पण्डितजी ! आप किस सोच में पड़ गये।'

पण्डितजी सजग होते हुये बोले- 'बेटा ! कुछ नहीं। तुम्हारी समस्या बड़ी है, पर मिटाना सरल हैं, घबराओ नहीं। मैं सर्वज्ञ भगवान का बताया हुआ मंत्र तुम्हें दूँगा, परन्तु जरा ध्यान से सुनना। पण्डितजी रत्नकरण्डश्रावकाचार का मंगलाचरण -

नमः श्री वर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते।।

पढ़ने के बाद उसका अर्थ करते हुये बोले 'देखो ! इसमें कहा है कि भगवान के ज्ञान में अलोकाकाशसहित विश्व के समस्त द्रव्यों की समस्त अवस्थायें, दर्पण के समान प्रतिबिम्बित हो रहीं हैं। जैसे दर्पण बाहर में होनेवाली घटनाओं/वस्तुओं को

जो कि उसमें प्रतिबिम्बित हो रही हैं, उन्हें हटाता/बुलाता नहीं है। बाहर वस्तुयें अपनी योग्यता से हैं, उनकी अवस्थायें अपनी योग्यता से बदल रही हैं, दर्पण मात्र ज्यों का त्यों झलकाता है।

उसी प्रकार भगवान लाखों वर्ष पहले क्या हुआ था और लाखों वर्ष बाद क्या होगा, उसे भलीभांति जानते हैं, परन्तु किसी भी घटना को बदलने का भाव भी उन्हें नहीं आता और जिन्हें (हमें) आता भी है तो वे भी उन घटनाओं को बदलने का विचार तो कर सकते हैं, पर बदल नहीं सकते।

जैसे किसी रास्ते में 10 किलोमीटर पर एक बगीचा या गड्ढा है, वह बगीचा या गड्ढा वहाँ ही है, चाहे आपको पता हो या न हो। चाहे कोई उस रास्ते का परिचित व्यक्ति हो या अपरिचित, हर व्यक्ति को वह बगीचा या गड्ढा उतनी ही दूरी पर मिलेगा। इसी तरह हमारे जीवन में जो कुछ भी लाभ-हानि, जीवन-मरण, सुख-दु:ख, आना-जाना भगवान के ज्ञान में आया है, वह सब उसी समय, उसी तरह, उसी निमित्त से होगा, उसे टालने, बदल पाने में कोई सक्षम नहीं है।'

'पर पण्डितजी ! ऐसा दिखता तो है कि जो मन्दिर आता है, भगवान की पूजन करता है, स्वाध्याय करता है, उसकी

दुकान अच्छी चलती है, परिवार में शान्ति रहती है, यह सब भगवान का ही तो प्रताप है।' वह सज्जन बोले।

'अरे भइया! हमारा सुख-दु:ख हमारे पूर्व के पुण्य-पाप के कारण है। हमारे पुण्य-पाप से हमारे भाई-बहिन या उनके पुण्य-पाप से हम सुखी-दु:खी नहीं हो सकते हैं। यदि पुण्योदय है तो समुद्र में भी रत्न मिलेंगे, रेगिस्तान में भी सोना मिलेगा और यदि पाप का उदय है तो सोना भी हमारे लिए मिट्टी रूप हो जायेगा।

जो लोग निर्वांछक होकर भगवान के दर्शन-पूजन, स्वाध्याय करते हैं, उन्हें सातिशय पुण्य बँधता है और बाहर में बिना चाहे ही अनुकूलतायें मिल जातीं हैं।'

'पण्डितजी हमने ऐसा भी देखा है कि जिसने अपने मकान में वास्तु के अनुसार काम करवाया, उनके घर में खुशहाली आ गई। इसलिये पूंछ रहा हूँ कि हमारे मकान-दुकान में कोई वास्तुदोष हो तो कृपा करके आप हमें बतायें।'

'भइया ! आप जरा शान्ति से सोचो, विचार करो। पाप के उदय में कोई दिशा, मंत्र, वास्तु काम नहीं आते, सच तो यह है कि एक ही दिशा में एक बाजार में 50 दुकानें हों, सभी

एक ही कम्पनी का माल लेकर बेच रहे हों, तब भी सबको अपने पुण्य प्रमाण ही धन मिलता है। उसमें दिशा क्या कर सकती है ? यदि कोई पूर्व दिशा में मुँह करके चासनी के साथ जहर खाये तो वह बचेगा ? नहीं वह मरेगा ही, उसे दिशा आदि बदल नहीं सकते।

बड़े-बड़े मांत्रिक अपने मंत्रों के रहते हुये भी दुखी दिखते हैं।

इसीलिये आचार्य अमितगति देव ने कहा है-

'स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।'

इसलिये यदि हम सुख के साधन चाहते हैं तो बाहर कुछ मत बदलो, अपनी सोच व परिणाम बदलो। हमारे वास्तु में दोष नहीं है, समझ में दोष है। यदि आपकी समझ/सोच यह हो गई कि मैं अपने परिणामों के कारण ही कर्म बांधकर आया हूँ, जिनका फल मुझे ही भोगना है, उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं है तो दूसरों का दोष देखना बंद हो जायेगा, पराधीनता का भाव छूटेगा, कषाय नहीं होगी और परिणाम बदलोगे तो पाप परिणाम के स्थान पर पुण्य परिणाम होंगे, तब पुण्य का ही बंध होगा और जब पुण्य का बंध होगा, तब

पुण्य का उदय आयेगा और बाहर में अनुकूलतायें, सम्मान, पद सब प्राप्त होंगे।

इसलिये सबसे पहला कर्तव्य है कि हम पर के दोष देखना छोड़कर अपने दोषों को पहिचाने और फिर मन से उन्हें दूर करने का प्रयास करें तो हमारे जीवन में सुख ही सुख होगा।'

'पण्डितजी तो फिर बड़े-बड़े धर्मात्मा भी भगवान की पूजन क्यों करते हैं, जबकि भगवान तो हमारा भला-बुरा करते ही नहीं हैं ?' सज्जन ने प्रश्न किया।

'देखो भाई! ज्ञानियों को भी भगवान की पूजन-भक्ति, दान आदि का राग आता है और वे उत्साहपूर्वक उनकी आराधना करते हैं, पर वे भगवान से कुछ लौकिक सामग्री मांगने के लिए यह सब नहीं करते। वे जानते हैं कि मन्दिर भिक्षालय नहीं, शिक्षालय हैं। वे तो पाप से बचने और उन जैसा पद पाने की भावना से यह सब कार्य करते हैं।

देखो भाई! आपके जीवन में वर्तमान की प्रतिकूलतायें पिछले भव के पाप परिणाम का फल है। यदि भविष्य में अनुकूलतायें चाहते हो तो वर्तमान में पुण्य परिणाम करो। इसके लिए देव पूजन, स्वाध्याय, संयम, दान आदि कार्य

वीतरागता के लक्ष्य से करो निश्चित ही भविष्य उज्जवल होगा।

भाई! जिनवाणी तो हमें सुखी होने को यही मंत्र देती है। मुझे तो यही मंत्र आता है। यदि आपको सही लगे तो स्वीकार करो और न लगे तो और समझने की कोशिश करो। जब सही लगे, तब स्वीकार करना पर इस सत्य को समझे बिना और कोई उपाय नहीं है।'

'पण्डितजी ! आपने जो कहा है, वह परम सत्य है। मेरी समझ में अभी इतना ही आया है कि मुझे यदि सुखी होना है तो आपके प्रवचन में आते रहना चाहिये। प्रवचन में वह बात सुनने को मिल रही है जो और कोई नहीं बताता। अन्य सब तो हमें तरह-तरह के अंध विश्वासों में ही उलझाते हैं; कोई कहता है खिड़की-दरवाजे की दिशा बदल लो, कोई कहता है कि यह विधान करा लो, कोई कहता है कि अंगूठी/ताबीज पहन लो। पर पण्डितजी ! आज समझ में आया है कि जब सर्वज्ञ भगवान ने सब कुछ देखा है, और उनका जाना हुआ ही होगा, तब मंत्र-तंत्र, वास्तु उसे कैसे बदल सकते हैं? पण्डितजी! आज से हमारी दशा बदले या न बदले, पर सोचने की दिशा तो बदल ही गई है।'

'अरे भइया ! जिसकी दिशा बदली, उसकी दशा बदलेगी ही। दृष्टि बदलने पर सृष्टि बदली नजर आने लगती है। सृष्टि कोई नहीं बदल सकता, पर दृष्टि बदलना हमारा स्वयं का पुरुषार्थ है।

बंधुओ! जिनवाणी उलझाती नहीं है, सुलझाती है, यदि हमें भगवान की सर्वज्ञता पर भरोसा आ गया तो सब प्रकार के अंध विश्वासों से बचकर हम वीतरागता के मार्ग पर लग जायेंगे। हमारा जैन शासन, सर्वज्ञ भगवान का शासन है, इसमें अंध विश्वासों/चमत्कारों के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रसन्न रहो और मस्ती में गाओ–

जो–जो देखी वीतराग ने, सो–सो होसी वीरा रे,
अनहोनी कबहूँ नहीं होसी काहे होत अधीरा रे।।'

बस आज इतना ही।' ❍

पापों से जो हमें बचावे, सुख दुःख में जो साथ रहे।
हो हितकारी, लगे न प्यारी, तो भी ऐसी बात कहे।।
हो विश्वास अटूट जहाँ पर, इक दूजे का कष्ट सहे।
है सद्भागी वह प्राणी जो, ऐसे सन्मित्रों के मध्य रहे।।

९

दान के लिए कमाओ मत...

पण्डित भोलारामजी घर पर बैठे स्वाध्याय कर रहे थे। बहू-पोते सभी अन्दर थे। उनकी बहू समता की एक सहेली अन्दर आई, तब बहू ने दादाजी से उनका परिचय कराया। 'बाबूजी! ये मेरी सहेली हैं रश्मि, यहीं पास की कॉलोनी में रहती हैं।'

रश्मि ने भी बाबूजी के पैर छूते हुये प्रणाम किया। पण्डितजी ने स्वस्थ रहो, प्रसन्न रहो का आशीर्वाद देते हुये पूछा – 'बेटा ! घर में कुशल मंगल है?'

'जी बाबूजी ! आपके आशीर्वाद से हम सब अच्छी तरह से हैं और बाबूजी ! आप कुशल हैं ?'

'हाँ बेटा ! देखो न, तेरी सहेली के हाथ का बना खा-खाकर मोटा हो गया हूँ। इतना अच्छा खाना बनाती है और प्यार से खिलाती है कि कमजोर होने का तो काम ही नहीं है। साथ ही मैं अपनी माँ का परोसा भोजन भी दिन भर करता रहता हूँ। मैं तो एकदम आनन्द में हूँ।'

'बाबूजी ! एक बात मेरी समझ में नहीं आई, बुरा न माने तो एक बात पूछूँ।' आश्चर्य सहित रश्मि ने कहा।

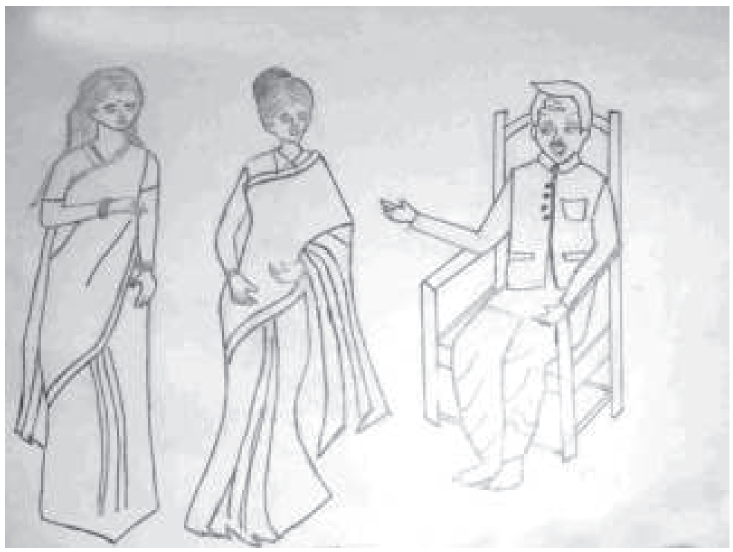

'बुरा मानना तो मेरी आदत में ही नहीं है बेटा! तुम्हें जो कुछ पूछना हो, पूछो, तू भी तो मेरी इस बेटी जैसी ही है। संकोच मत करो पूछो।'

'बाबूजी आपने कहा कि अपनी माँ का बनाया दिन भर खाते हैं तो अभी आपकी माँ हैं ? और हैं तो कहाँ हैं ? मेरी इस सहेली ने तो उनके बारे में कभी कुछ बताया ही नहीं।'

पण्डितजी हंसते हुये बोले–'अच्छा तू समझ रही होगी

इस बुड्ढे की माँ मर गई होगी, अभी तक कहाँ जिन्दा होगी? और उसका बनाया भोजन दिन भर भी कैसे कर सकता हूँ। बेटा ! मेरी माँ कभी मरती ही नहीं। मुझे जन्म देने वाली, शरीर का संयोग कराने वाली माँ तो इस लोक से चली गई, परन्तु मुझे शान्तिपूर्ण जीवन देने वाली मेरी प्यारी माँ जिनवाणी है। यह देखो न मेरे सामने ही बैठी है। यह मुझे हर समय कुछ न कुछ परोसती ही रहती है और मैं भी भुक्कड़ हूँ दिन भर खाता ही रहता हूँ।' यह कहकर वह हंसने लगे।

रश्मि थोड़ा झेंपती हुई बोली – 'अच्छा तो आप शास्त्र की बात कर रहे हैं और इनसे जो तत्त्वज्ञान आप प्राप्त करते हैं, उसे भोजन कह रहे हैं। अब समझ में आ गया।'

'बेटा ! तुमने तो मुझसे पूँछ लिया पर मैं भी एक बात पूँछ लूँ। और हंसते हुये बोले तेरी बात का मैंने बुरा नहीं माना, तो मेरी बातों का तुम भी बुरा मत मानना।'

'अरे बाबूजी ! आपकी बातों का मैं क्यों बुरा मानूँगी?'

'तो बेटा ! मैं यह पूँछ रहा हूँ कि तुम यहीं पास में ही रहती हो, अक्लमंद हो परन्तु कभी मन्दिर में स्वाध्याय में नहीं आती मैंने तो तुझे स्वाध्याय में आज तक नहीं देखा।'

'बाबूजी ! मैं क्या करूँ, मुझे फुरसत ही नहीं मिलती

इसलिये मैं कभी-कभी मन्दिर तो आती हूँ, परन्तु स्वाध्याय में बैठने का तो समय ही नहीं है। आज यहाँ भी मैं अपने काम से ही आ पाई हूँ।' रश्मि सफाई देते हुए बोली।

'क्यों बेटा ! किस काम में लगी रहती हो ?'

'बाबूजी ! घर पर ही साड़ियों की दुकान और ब्लाउज सिलने, साड़ी में फॉल लगाने का काम करती हूँ, इसकारण फुरसत ही नहीं मिलती।'

बाबूजी धीरे से बोले- 'हाँ बेटा ! जब इतना काम करोगी, तो समय कहाँ से मिलेगा ? क्यों बेटा ! तुम्हारे पति कुछ काम नहीं करते, क्या वे बेरोजगार हैं ?'

'अरे नहीं बाबूजी ! ऐसा नहीं है, उनकी तो बहुत अच्छी नौकरी है। अपना घर है, गाड़ी है, कोई कमी नहीं है, पर घर में बैठे क्या करें; इसलिये ये काम चालू किया था।'

पण्डितजी उत्तर सुनकर थोड़ी देर चुप रह गये। फिर बोले - बेटा ! कितना जमाना बदल गया है । मेरी गाँव में एक छोटी सी दुकान थी, मैं कभी बाहर जाता तो दुकान बन्द हो जाती। एक बार एक पड़ोसन ने इसकी सास से कहा कि जब पण्डितजी नहीं रहते, तब तुम ही दुकान पर बैठ जाया करो, क्यों दुकान बन्द रखती हो। तब पता उसने क्या जबाब

दिया ? मेरे पति इतने निकम्मे नहीं हैं कि एक दिन दुकान बन्द रहे तो हम भूखे रह जायेंगे। मैं अपने घर के काम और स्वाध्याय छोड़कर दुकान पर नहीं बैठ सकती।

वह एक दिन को भी अपने दिन का स्वाध्याय व घर में यत्नाचारपूर्वक होने वाला काम छोड़ कर दुकान पर बैठने को तैयार नहीं थी। उस समय साधन ज्यादा नहीं थे पर संतोष था, सुख था। पर बेटा ! यहाँ आकर मैं देखता हूँ – आलीशान मकान हैं, गाड़ियाँ हैं, पद है, सब तरह के साधन हैं, पर शान्ति नहीं है। वर्तमान में शान्ति नहीं तो भविष्य भी अशान्त होनेवाला है। तुम्हीं कह रही हो कि मन्दिर भी कभी-कभी आती हो तो बेटा ! मात्र परिग्रह जोड़ने, उसे सम्हालने का भाव करती रहोगी, तो वह तो पाप भाव है और पाप से तो कैसे शान्ति मिलेगी ?'

'पर बाबूजी ! आज का समय पहले जैसा नहीं है, आज आवश्यकतायें बढ़ गयी हैं, उन्हें पूरा करने के लिए पैसा तो चाहिये ही।' रश्मि ने स्पष्टीकरण किया।

'बेटा ! मैं यहाँ देखता हूँ आवश्यकतायें तो जो पहले थीं, वही हैं पर शौक बढ़ रहे हैं। रहने को मकान चाहिये अब वह चाहे 20 लाख का हो या 50 का; आने-जाने को गाड़ी

चाहिये चाहे वह 5 लाख की हो 25 की। बात करने को यह तुम्हारा क्या कहलाता है.... हाँ मोबाइल, मोबाइल चाहिये तो वह 5 हजार का हो चाहे 50 का, उससे बात ही तो करेंगे।

पर हम आवश्यकताओं के नाम पर अपने शौक बढ़ाये जा रहे हैं। 50 लाख के मकान, 25 लाख की गाड़ी और 50 हजार के मोबाइल को आवश्यकता का नाम दे रहे हैं, जबकि हमारी आवश्यकता तो उनसे आधी कीमतवाले सामान से भी पूरी हो सकती है।

बेटा यह कौन सी बुद्धिमानी है कि धर्म छोड़कर, शान्ति गंवाकर और पाप कमा कर, पैसा कमाओ और फिर पाप से कमाये पैसे को पाप कार्यों में ही लगाकर फिर पाप कमाओ।'

'नहीं, बाबूजी ! हम सारा पैसा अपने ही काम में नहीं लेंगे, जब हम अच्छी कमाई कर लेंगे तो मन्दिर बनाने, पाठशाला चलाने, साहित्य छपाने में दान भी करेंगे।' रश्मि ने कहा।

'बेटा ! बात तो अच्छी कह रही हो पर हमारे आचार्य तो कहते हैं कि कमाया हो तो दान करना, पर दान करने के लिए नहीं कमाना। आचार्य पूज्यपादस्वामी ने लिखा है–

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तं संचिनोति यः।
स्व शरीरं स पंकेन, स्नास्यामीति विलिम्पति।।'

'बाबूजी ! हमारी समझ में नहीं आया कि आचार्य ने क्या कहा है। आप हिन्दी में समझाओ ना।' समता ने कहा।

भोलारामजी हंसते हुये बोले 'देखो बेटा ! कैसा काल आया है कि हम पढ़े-लिखे बहुत हैं, डिग्रियाँ ऊँची-ऊँची हैं, पर देखो ! हम अपने धर्म पिता की भाषा नहीं समझ पाते। चलो, कोई बात नहीं, मैं बताता हूँ -

इस छन्द में आचार्यदेव कह रहे हैं कि कोई व्यक्ति दान देने की भावना से कमाई करता है, धन एकत्र करता है तो वह व्यक्ति तो उस व्यक्ति जैसा काम कर रहा कि कोई नहाने जा रहा था तो रास्ते में कीचड़ लपेटने लगा, तब किसी ने पूछा कि भाई ! यह क्या कर रहे हो ? तब वह बोला - नहाने जा रहा हूँ, इसलिए कीचड़ लपेट रहा हूँ।'

'अरे बाबूजी! वह तो बिल्कुल मूर्ख है, उसे नहाना ना हो तो कोई बात नहीं, पर नहाना है तो कीचड़ लगाना अच्छा नहीं है।' हँसते हुए और होशियारी दिखाते हुए रश्मि ने कहा।

'बस बेटा ! यही बात तो आचार्य समझा रहे हैं कि धन कमाया हो तो अच्छे कार्यों में धन लगाना, पर दान करने की भावना रखकर कमाना नहीं। पहले पाप हो गया हो तो दान

करके पुण्य कमाना पर पुण्य करने के नाम पर पाप की कमाई नहीं करना।

बेटा ! हम तो ठहरे गाँव के गंवार आदमी जो मन में आया सो कह दिया, अपने मन पर नहीं लेना।'

'नहीं बाबूजी ! आपने कुछ गलत नहीं कहा। सच तो यह है बाबूजी ! कि मेरे पीहर में मन्दिर था नहीं, कभी हम स्वाध्याय में गये नहीं, अतः हमें वैसे संस्कार ही नहीं मिले हैं, जो आपके घर में हैं, आपके पोते और बहू की तो सब जगह प्रशंसा होती है कि देखो, ये अपने दादाजी के संस्कारों से कितने अच्छे काम कर रहे हैं, मन्दिर को सम्हाल रहे हैं।' रश्मि ने विनम्रता से कहा।

'बेटा! सब कहते हैं - धन-समाज गज बाज राज तो काज न आवे।' यह सब पैसा, प्रतिष्ठा, परिवार आदि काम नहीं आयेंगे, सब यहीं छूट जानेवाले हैं। पर मानते कोई नहीं है। सबको लगता है धर्म-कर्म तो ढ़कोसला है, पुराने जमाने की बातें हैं। पैसा कमाओ, मानो अगले भव में भी यही साथ जायेगा। पर बेटा ! सुख का साधन एक मात्र धर्म ही है। रक्षा करनेवाला धर्म ही है। इसलिये बेटा ! समय निकालो, स्वाध्याय करो। तुम्हें संस्कार नहीं मिले, वहाँ साधन नहीं थे, पर यहाँ

तो साधन हैं, अब उनका उपयोग करो, बच्चों को भी संस्कार दो, तुम्हारा घर यहीं स्वर्ग हो जायेगा।

बेटा! मेरी माँ के हाथ का बना हुआ तू भोजन करेगी तो तू सबके हाथ का खाना भूल जायेगी।'

'ठीक है बाबूजी ! आप ने जो बहुओं के लिए कक्षा प्रारंभ की है, मैं उसमें अवश्य आऊँगी। फिर धीरे-धीरे स्वाध्याय में भी बैठूँगी।' रश्मि ने हर्षविभोर होकर कहा।

'शाबास बेटा ! कहा भी गया है शुभस्य शीघ्रम। कल से ही कक्षा में आओ, फिर बाद में आराम से दुकान चलाओ।'

हंसते हुये रश्मि बोली - 'अरे! नहीं बाबूजी ! अब मुझे दुकान नहीं चलाना। मेरे पति निकम्मे थोड़े ही हैं जो मैं दुकान चलाऊँ। बस जो सामान है, उसे धीरे-धीरे खतम करके दुकान और सब काम बन्द कर दूँगी।'

पण्डितजी हँसते हुए बोले 'बेटा ! दुकान बन्द कर दोगी तो पतिदेव नाराज हो जायेंगे और मुझे गाँव से बाहर कर देंगे।'

'अरे नहीं बाबूजी! वह तो खुश हो जायेंगे क्योंकि वह तो जबसे आपकी कक्षायें चलीं हैं, तभी से कह रहे थे कि घर में क्या कमी है, जो इस दुकान के चक्कर में मन्दिर नहीं जाती

हो। गाँव में तो साधन नहीं था, यहाँ मिल रहा है तो तुम मन्दिर जाओ; पर मैं ही नहीं आती थी, उन्हें जब पता चलेगा कि मैं कक्षा में जाने लगी तो वह तो बहुत खुश होंगे।

बाबूजी ! आपने आशीर्वाद दिया था प्रसन्न रहो। सच में हम अभी तक प्रसन्न नहीं थे, अब आपकी माँ के हाथ का प्रसाद पाकर हमारे घर में भी प्रसन्नता आ जायेगी।'

रश्मि चरण स्पर्श करके व हर्ष के अश्रु बिखेरते हुये घर चली गई। बाबूजी की पुत्रवधु अपने इतने प्यारे भोले भोलाराम शास्त्री रूपी ससुर को पाकर अपने को धन्य मान रही थी।

पण्डितजी अपनी माँ का बनाया भोजन करने लगे। ❍

इस कलिकाल में जिनवाणी का अध्ययन युवावस्था में करने को मिलना चिन्तामणि समान दुर्लभ है। एक ओर जहाँ सारा ही जगत विषय-कषाय की आग में जल रहा है; किशोर हों या युवा पद, प्रतिष्ठा व परिग्रह की दौड़ में घोड़े के समान दौड़ रहे हैं व माता-पिता घुड़सवार की भांति अपने बालकों को दौड़ाये जा रहे हैं, जिन्हें स्वयं ही पता नहीं है कि इस दौड़ की मंजिल कहाँ है? ऐसे पर्यावरण में भव-भ्रमण-नाशक जिनवाणी के गहन अध्येताओं के साथ अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होना, थार के मरुस्थल में कल्पवृक्ष की प्राप्ति के समान है।

– मध्यान्तर पुस्तक से साभार

10

विरासत...

पण्डित भोलारामजी नित्य कर्म करने के बाद मन्दिर में अभिषेक-पूजन करके स्वाध्याय में बैठ जाते थे। पण्डितजी का उद्देश्य मात्र किताबी ज्ञान देना नहीं था। उनका पहला उद्देश्य तो यही था कि व्यक्ति किसी भी प्रकार धर्म मार्ग में लगे। उसे न्याय-युक्ति से धर्म का माहात्म्य बतलाने हेतु वह बालकों/युवाओं/महिलाओं को किसी न किसी प्रकार समझाने का उद्यम करते। वह किसी से परिचित हैं या नहीं, उन्हें इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता था। वह बिल्कुल अपरिचित से भी पूर्व परिचित की भांति सहजता से बात कर लेते थे।

उनकी सहज शैली श्रोताओं को प्रवचन या शास्त्रीय ज्ञान नहीं लगता था, उन्हें लगता था मानों ये मेरे से ही बात कर रहे हैं मेरे हित के लिये ही बात कर रहे हैं, उनके प्रवचन में कभी अहंकार भरी या अन्य को ठेस पहुँचाने वाली भाषा का प्रयोग नहीं होता था। आबाल वृद्ध जो भी उनकी सभा में एक बार

आ गया, वह जब तक विशेष मजबूरी न हो तब तक आना नहीं छोड़ता था।

उनकी प्रसिद्धि की चर्चा सुनकर एक नये श्रोता प्रवचन

में आये। उनका नगर में अच्छा व्यवसाय था। प्रवचन पूरा होते ही पण्डितजी से वह बोले – 'पण्डितजी ! आप जो कह रहे हैं, वह सब सही है, ऐसा लगता है पर परिवार व बच्चों के प्रति भी तो अपनी जिम्मेदारी बनती है।'

पण्डितजी बाले – 'बिल्कुल बनती है। जब परिवार के साथ रह रहे हो, वह आपकी आज्ञा मानते हैं, आपको स्नेह देते हैं, माता-पिता ने आपका पालन-पोषण किया है, आपको पढ़ा लिखा कर इस योग्य बनाया है कि आप दुनिया में शान

के साथ रह सको। पत्नी गरम-गरम भोजन कराती है, आपका ख्याल रखती है, बच्चे प्रसन्नता देते हैं और उनसे ये भविष्य में सेवा करेंगे, ऐसी आशा आप रखते हैं तो आपकी भी जिम्मेदारी बनती ही है।'

'जी पण्डितजी ! इसीलिये मैं आपके स्वाध्याय में नहीं आ पाता। पिताजी ने मुझे बी.ए. तक पढ़ाया था, मैंने अपने बच्चों में एक को डॉक्टर व एक को सी.ए. करवा दिया है। पिताजी ने मुझे दुकान दी थी मैंने आज उनके आशीर्वाद से फैक्ट्री खोल ली है। उन्होंने मुझे छोटा-सा मकान दिया था, उसे मैंने अब बंगले के रूप में बना लिया है। आज मैं 55 साल का हो गया हूँ, पर मुझे सन्तोष है कि मैंने पिताजी की विरासत की सुरक्षा की और उसे आगे बढ़ाया। पण्डितजी ! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मैंने जो किया, वह सही किया या नहीं ?'

पण्डितजी ने कहा कि 'भाई! आपने अपनी लौकिक जिम्मेदारी बहुत अच्छी तरह से निभाई है, बच्चों को भी अच्छी तरह से पढ़ाया पर बेटे मन्दिर में कभी दिखते नहीं, स्वाध्याय में तो आप भी नहीं आते, ऐसा क्यों ?'

'अरे पण्डितजी ! जब मैं छोटा था, तब पिताजी मेरा हाथ

पकड़ कर मन्दिर लाते, रविवार को पूजन कराते, छहढ़ाला, मोक्षशास्त्र कंठस्थ कराते। मेरे पिताजी के जाने के बाद घर परिवार की सारी जिम्मेदारी मेरे सिर पर आ गई, उन्हें पूरा करने में ही समय निकल जाता है। इसलिए मैं स्वाध्याय में भी नहीं आ पाता हूँ।

रही बच्चों की बात, तो बच्चों को तो पढ़ाई से ही फुरसत नहीं है। आजकल ढ़ाई साल की उमर में तो स्कूल जाने लगते हैं, फिर कोचिंग, होमवर्क का इतना बोझ। थोड़ा-बहुत समय मिलता है तो टी. वी. देखने-खेलने में ही चला जाता है तो फिर मन्दिर कैसे आते और अब तो अपने-अपने काम में व्यस्त हैं, इसलिये उन्हें मन्दिर आने का समय ही नहीं मिलता।' फिर अपनी प्रशंसा करते हुये बोले- 'पर मैंने इतने संस्कार तो उन्हें दिये हैं कि दशलक्षण पर्व में कहीं भी हों, एक बार दर्शन करने जरूर आते हैं।'

'भैया ! आज की पढ़ाई तो सच में ही बहुत ज्यादा हो गई है, उसके बारे में तो मैं क्या कहूँ, कभी मौका लगेगा तो बताऊँगा पर बेटा ! जैसे बच्चों को पढ़ाना, पैसा कई गुना ज्यादा करके देना, अपनी ही जिम्मेदारी है, उसी तरह धार्मिक संस्कार देना भी तो हमारी ही जिम्मेदारी है। यदि हमारे माता-

पिता ने यह जिम्मेदारी न निभाई होती तो आज हम कहाँ होते, सोचो।

पिताजी ने आपको छोटा मकान दिया, आपने बंगला बना लिया, पिताजी ने आपको दुकान दी, आपने फैक्ट्री खोल ली, पिताजी ने आपको बी.ए. पढ़ाया आपने बच्चे को सी.ए. करा दिया, पर मेरे भाई ! पिताजी आपको उंगली पकड़ कर मंदिर लाते थे, रविवार को पूजन कराते थे, छहढ़ाला-तत्वार्थसूत्र पढ़ाते थे/याद कराते थे तो आपकी गणित के हिसाब से तो आपको बच्चों को रोजाना पूजन कराना चाहिये थी, छहढ़ाला के प्रवचन व मोक्षशास्त्र की टीका पढ़ाना चाहिये थी। तब आप उनकी विरासत के सही हकदार हो सकते थे।'

आपने लौकिक सम्पत्ति की सुरक्षा व वृद्धि तो अच्छी तरह से की पर उनकी धार्मिक सम्पत्ति जो कि उनकी सही में धरोहर थी, उसपर तो आपने ध्यान ही नहीं दिया। पाप की सम्पत्ति की दिवाली और पुण्य की संपत्ति का दिवाला निकाल दिया।

आप सोचो ! जब आपके पिताजी आपको मन्दिर लाते थे और आप तोतली भाषा में णमोकार मंत्र या सूत्र पढ़ते

थे, तब उनके चेहरे पर कितनी प्रसन्नता होती थी। क्योंकि उन्हें इस बात की खुशी होती थी कि वह अपने पिता से प्राप्त संस्कारों को अगली पीढ़ी के लिए दे रहे हैं, अपनी जिम्मेदारी सही तरह निभा रहे हैं। क्योंकि यही संस्कार हमारे जीवन में शान्ति ला सकते हैं। और आपको यह संस्कार देकर वह समझ रहे थे, मेरा बेटा अपने बच्चों तक यह परम्परा चलायेगा जिससे मेरे बेटे-पोते कभी अशान्त नहीं होंगे, दु:खी नहीं होंगे।

पर भैया ! आपने उनके विश्वास को तोड़ा है। आप भी स्वयं संस्कारों से दूर होकर केवल पापमय जीवन जी रहे हो और बच्चों को तो इन संस्कारों से रहित कर ही दिया है।

यदि सौभाग्य से उन बच्चों को बुढ़ापे में धर्म की रुचि लग गई तो वे बच्चे निश्चित ही कहेंगे कि हमारे पापा ने हमारे साथ अन्याय किया जो हमें बचपन में यह संस्कार नहीं दिये।'

'पण्डितजी ! आप बिल्कुल सही कह रहे हैं।' एक श्रोता बोला।

'भाइयो ! आप सभी से भी कहना चाहूँगा कि विरासत में प्राप्त सब संपत्तियाँ बढ़ा कर देना चाहते हैं तो फिर धर्म के

संस्कार भी प्राप्त हुये हैं, वह भी तो बढ़ा कर देना ही होंगे, यह भी तो हमारी ही जिम्मेदारी है। अन्यथा समझ लेना संस्कारों के बिना की सुविधायें पतन का कारण हैं। संतान को संपत्ति नहीं संस्कार दीजिये।

देखो भइया ! हम तो ठहरे गाँव के गंवार आदमी, अपनी मस्ती में मस्त रहते हैं, जो मन में आया, सो कह देते हैं, किसी को कुछ बुरा लगा हो तो घर ले जाना और कल से मन्दिर आना चालू कर देना। अब बस घर चलें।'

'अरे नहीं, पण्डितजी ! आपने तो हमारी जिम्मेदारी का सही ज्ञान कराया है। मैं अपने पिता से प्राप्त विरासत की अधूरी सुरक्षा करके ही अहंकार कर रहा था कि मैं सही कर रहा हूँ। आज का दिन जरूर शुभ होगा जिससे कि मुझे आज प्रवचन में बैठने और आपसे चर्चा का भाव बन गया।'

'बहुत अच्छा किया भइया ! यहाँ तो कोई भी कुछ भी चर्चा कर सकता है। चर्चा से चेतन मिले।'

'लेकिन पण्डितजी ! हमने चेतन पाने के लिए नहीं अपनी होशियारी दिखाने को चर्चा की थी पर समझ में आ गया कि मैं होशियार नहीं, मैं तो गँवार आदमी हूँ।'

'नहीं भइया ! सभी भूले हुये भगवान हैं, जनम से कोई कुछ सीख कर नहीं आता, इसी तरह के प्रसंग बनने पर हम सही रास्ते पर आते हैं।'

'धन्यवाद पण्डितजी ! मैं तो अब नियिमित स्वाध्याय में आऊँगा ही, साथ ही परिवार में भी सभी को कहूँगा। मेरी भावना है कि सभी स्वाध्याय में आवें।'

'भइया ! तुम्हारी भावना सफल हो। जयजिनेन्द्र।' ❍

भक्ति

जहाँ जीवित है प्रत्याशा
वहाँ
भक्ति/प्रेम/आदर में
हो नहीं सकता
क्योंकि
भक्ति/प्रेम/आदर में
विनिमय की अपेक्षा नहीं होती
मात्र होता है
निरपेक्ष/निर्वांछक समर्पण
मात्र
उनसे व उनके गुणों के प्रति अनुराग
अर्थात्
मात्र उनके बताये मार्ग पर
चलने का राग।।

11

संस्कार ही संपत्ति है...

भोलाराम शास्त्री दोपहर में अपने घर के बरामदे में बैठे हुये थे और छहढ़ाला कि पंक्तियाँ गुनगुना रहे थे-

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवे।
दौल आपको रूप रहे फिर अचल रहावे।।

--

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवाणी।
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।।

वह विचारमग्न हो गये कि यह जीव धन समाज व परिवार के पीछे अपना सारा मनुष्य जीवन बेकार ही गंवा रहा है। एक पल भी आगे जीवित रहेगा या नहीं, इसका तो भरोसा है नहीं और पीढ़ियों के लिये धन जोड़ने में लगा हुआ है।

तभी नगर के एक अच्छे व्यवसायी सेठ महाचन्दजी ने घर में प्रवेश किया। उम्र लगभग 70 वर्ष थी परन्तु पुण्योदय से शरीर का गठन इस तरह का था मानो 55-60 वर्ष के हों।

काले बाल, असली दांत, तेज चाल, कम नंबर का सुन्दर सा चश्मा, शुभ्र-धवल वस्त्र उनके शारीरिक व आर्थिक वैभव को प्रकट कर रहे थे। पण्डितजी से उनका मिलना-जुलना मन्दिरजी में कभी-कभी हो जाता था। व्यवसाय की व्यस्तता, सामाजिक व पारिवारिक जिम्मेदारियों व स्वाध्याय की रुचि न होने से वह स्वाध्याय में नहीं बैठते थे, अतः उनका परिचय जयजिनेन्द्र तक ही सीमित था। पण्डितजी तो अपने में मस्त रहनेवाले, उन्हें सेठजी मन्दिर में मिलते थे, अतः यह तो पता था कि यह जैन हैं पर यह नगर सेठ हैं, इसका उन्हें पता नहीं था और उन्हें इस तरह के परिचय की आवश्यकता

भी नहीं थी। पण्डितजी को देखते ही उन्होंने आदरभाव के साथ जयजिनेन्द्र किया। पण्डितजी ने भी वात्सल्यभावपूर्वक अभिवादन करके बैठने का संकेत किया। उनके बैठने पर आने का कारण पूछा।

सेठजी ने कहा –'पण्डितजी ! मैं अपनी कपड़े की दुकान का उद्‌घाटन आपके करकमलों से कराना चाहता हूँ।'

पण्डितजी बोले– 'अरे भाई! दुकान का उद्‌घाटन मुझसे क्यों कराना चाहते हो?'

'पण्डितजी ! आप जैसे पवित्र आत्मा का हाथ लगेगा तो दुकान अच्छी चलेगी।' महाचन्दजी ने कहा।

पण्डितजी हंसते हुये बोले 'अरे सेठजी ! मेरा हाथ लग गया तो दुकान चलेगी नहीं, बंद हो जायेगी।'

सेठजी बोले 'अरे पण्डितजी ! आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? आप पुण्यात्मा हैं, आपका हाथ लगने से दुकान बन्द क्यों होगी ?'

भोलारामजी बोले 'देखो भाई! मैं तो हमेशा यही कहता हूँ कि आप जैसे लोगों की उम्र अब दुकान पर बैठने की नहीं है, अब तो मन्दिर में आकर अन्दर बैठने की उम्र है। तो मैं

दुकान चलाने की भावना ही नहीं रखता, मैं तो सबकी पाप की दुकानें बन्द कराकर धर्म की दुकानें चलाना चाहता हूँ, इसलिये मैंने कहा कि मेरा हाथ लगेगा तो दुकान बंद हो जायेगी।'

'पण्डितजी ! आप बात तो सही कह रहे हैं, पर आजीविका के लिये कुछ तो करना ही पड़ता है न ?'

'हाँ यह बात तो है, तो क्या आप अभी तक कुछ नहीं करते थे ?'

'अरे नहीं, पण्डितजी ! अपनी शहर में तीन दुकानें हैं, जो बहुत अच्छी चल रहीं हैं, यह तो चौथी दुकान है।'

'अरे वाह सेठजी ! आप तो कह रहे हो कि आजीविका के लिए कुछ करना पड़ता है, पर यह तो परिग्रह बढ़ाने व अपने कीमती जीवन को बरबाद करने के लिए दुकान चालू कर रहे हो आजीविका के लिए नहीं।'

सेठजी थोड़ा संकोच करते हुये बोले- 'पण्डितजी ! जमाना खराब है, कहीं बहू-बेटे बुढ़ापे में साथ ने दें तो इसके लिये अपने पास साधन होना चाहिये जिससे कि हम पराधीन न रहें।'

'सेठजी ! यह बात बिल्कुल निराधार है। बचपन में हमने

बच्चों का पालन किया तो क्या वे पराधीन थे और दुखी थे; इसी तरह अपने बच्चे अपनी सेवा करें तो इसमें क्या पराधीनता है? मेरे पास तो पैसा नहीं है, पर मेरे पुण्य का उदय है और बच्चों को संस्कार दिये तो मुझे तो आज कोई कमी नहीं है। आपके भी अगर पुण्य का उदय रहा और आपने भी अगर बच्चों को संस्कार दिये होंगे तो निश्चित ही वे सेवा करेंगे और आपको धर्म साधना करने में सहयोगी बनेंगे।'

'यह बात तो है पर पण्डितजी ! बच्चे तो अलग-अलग अपनी दुकान पर बैठते ही हैं, पर मैं सोचता हूँ यह दुकान और अपने हाथ से खोल दूँ तो आनेवाले पोतों को कोई दिक्कत न हो।'

'सेठजी एक बात कहूँ, आप बुरा तो नहीं मानोगे।'

'अरे नहीं, पण्डितजी ! आपकी बात का कैसा बुरा, आप तो जो भी कहते हैं, हमारी भलाई के लिये ही कहते हैं, आप तो कहिये जो भी आपको कहना हो।'

'सेठजी ! क्या आपके पोते विकलांग/असहाय/मंदबुद्धि पैदा होनेवाले हैं?'

'अरे पण्डितजी ! शुभ-शुभ बोलो। आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?'

'अरे भाई ! मैं तो शुभ ही बोल रहा हूँ, आपका कल्याण हो, आप धर्म मार्ग में लगें, यह तो शुभ ही है। पर आप कह रहे हो कि होनेवाले पोतों की व्यवस्था करने के लिये दुकान खोल रहे हो तो इसका मतलब तो यही हुआ कि आपके पोते या तो अपाहिज होंगे, नालायक होंगे या निकम्मे होंगे या मंदबुद्धि होंगे जिससे कि वह तो कमाने लायक होंगे नहीं, इसलिये आप ही उनके लिये कमाकर रखे जा रहे हो, जिससे कि उन्हें समस्या नहीं आवे।

देखो, सेठजी ! मैं तो ठहरा गाँव का गँवार आदमी, जो मन में आया सो कह दिया, बुरा नहीं मानना।'

सेठजी भावुक होते हुये बोले 'नहीं पण्डितजी ! गँवारपने का काम तो मैं ही कर रहा था। आपने तो मेरी आंखें खोल दी हैं। मैं ही अभी तक गलत सोच रहा था और गलत रास्ते पर जा रहा था।'

'देखो सेठजी ! एक कहावत है –

पुत्र सुपत्र तो क्यों धन संचय, अपने आप कमा लेगा।
पुत्र कुपुत्र तो क्यों धन संचय, एक क्षण में सब गंवा देगा।'

आपके घर में जो भी जन्म लेगा वह अपना पुण्य लेकर ही आयेगा, उसका अपना ज्ञान होगा जिससे वह सब काम

कर सकेगा। आप संपत्ति से अधिक इस बात की चिन्ता करो कि आप उन्हें धर्म के संस्कार कैसे दे सकते हैं ?'

'अरे पण्डितजी! पोतों को संस्कार देने की तो बात बाद की है, मैं तो यह सोच रहा हूँ कि अपने आप को कैसे संस्कार दूँ। पोते तो आयेंगे तो उनकी उमर पड़ी है सीखने की पर मेरी तो थोड़ी सी ही बाकी है। अब यह दुकान तो खुलना होगी सो खुलेगी, चलना होगी सो चलेगी, पर मैं कल से ही एक दुकान प्रारंभ कर रहा हूँ, वह है स्वाध्याय की दुकान और वह तो पण्डितजी ! आपके हाथों से ही उद्घाटित होगी। उसका उद्घाटन तो आप करेंगे न?'

'सेठजी! उस दुकान का तो बहुत ही मंगल भावना से उद्घाटन करूंगा और भावना भाऊँगा कि वह दुकान जोरदार चले, जब तक मुक्ति का लाभ ना हो, तब तक निरन्तर गतिमान रहे।'

'बस पण्डितजी ! यही आशीर्वाद दीजिये।' ❍

कालचक्र बदला अभी, बदल गये सब मूल्य।
रक्त बहायें मित्र का, स्वारथ लगे अमूल्य।।148।।

भ्रातावत् सन्मित्र पर, होता था विश्वास।
नहीं रहा विश्वास अब, हुआ मूल्य का ह्रास।।149।।

12

समझदारी...

पण्डित भोलारामजी निरन्तर स्वाध्याय में रत रहते। वे अन्दर से गंभीर प्रकृति के परन्तु बाहर से सदैव प्रसन्न मुख-मुद्रावाले थे, उनकी बड़ी-बड़ी मूंछों में से हमेशा ही मौक्तिक दंत पंक्ति चमकती रहती थी। जो भी उनके पास आता; वह प्रसन्न होकर ही उनके पास से लौटता था। वे आबाल-वृद्ध सभी के प्रिय दादाजी थे।

पण्डितजी अब नगर के प्रसिद्ध विद्वान् के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनके बेटे-बहू-पोता-पोती भी अपने दादाजी का सम्मान देखकर गौरव का अनुभव करते एवं उनके भोलेपन व सहृदयता से सदा ही अभिभूत रहते। उनके चेहरे से कभी गुस्सा तो किसी ने देखा ही नहीं था। घर में काम करनेवाले भी पण्डितजी के व्यवहार की चर्चा घर में करते व कहते जैन धर्म सच में ही महान होगा, तभी तो हमारे दादाजी उस धर्म को पाकर इतने प्रसन्न रहते हैं।

एक बार उनके पौत्र चैतन्य के मित्र संजय, अंकित, नीलेश, उनके घर आये और वे मित्र की माँ के हाथों से गरम-

गरम नाश्ता करने के बाद वापस जा ही रहे थे कि बरामदे में मस्ती में गुनगुनाते आराम कुर्सी पर आराम से बैठे दादाजी को देखा तो सब उनके पास गये और चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लिया। उन्होंने बच्चों से कहा – 'बच्चो ! आप सब कैसे हैं ? पढ़ाई अच्छी तरह से चल रही है ?'

सभी बोले – 'दादाजी ! हम सब तो अच्छी तरह से हैं और अब तो परीक्षायें नजदीक आ रहीं हैं, इसलिये पढ़ाई भी जोर-शोर से चल रही है।

और दादाजी ! आप तो कुशल मंगल हैं ?'

यह प्रश्न सुनकर पण्डितजी थोड़ा गंभीर हो गये और

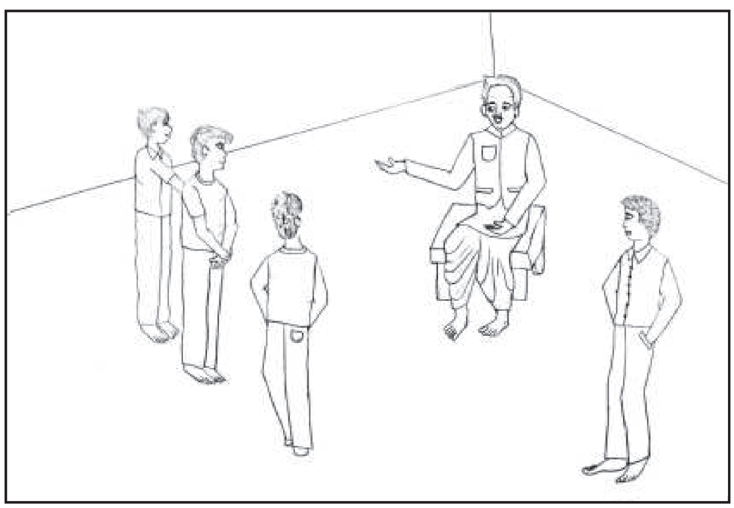

फिर हंसते हुये बोले। 'बेटा आप लोगों को जल्दी न हो तो एक बात बताऊँ?'

सभी बोले – 'अरे दादाजी ! आपसे तो बात करने का मौका मिलता ही नहीं है, अच्छा है आप ही कुछ बताना चाह रहे हैं, हम जरूर सुनेंगे, आप बताइये।' '

पण्डितजी बोले – 'जैसा आप लोगों ने हमसे पूछा है कि आपकी कुशलता है, ऐसा ही हाल–चाल एक बार कविवर भूधरदासजी से उनके मित्रों ने पूछा था, तब उन्होंने क्या जवाब दिया, सुनना चाहोगे और वही जवाब मेरा है –

जोई दिन कटे सोई आयु में अवसि घटै,
बूंद-बूंद बीते जैसे अंजुलि को जल है।
देह नित क्षीण होत, जोवन मलीन होत,
नैन तेजी हीन होत, क्षीण होत बल है।।
आवै जरा नीरी, तकै अन्तक अहैरी आय,
परभौ नजीक जात, नरभौ विफल है।।
मिलके मिलापी जन पूंछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा मांहिं मित्र काहे की कुशल है ?'

पण्डितजी ने अपनी गंभीर आवाज में सस्वर इस सवैया को सुनाया और सुनाकर हंसने लगे तब अंकित बोला – 'अरे

दादाजी! आपने जो कहा, वह एकदम सत्य है, यह दशा तो हमारी भी हो रही है। सच में तो धर्मसाधन बिना बीतते हुये जीवन में कुशलता कहाँ है ?'

तब संजय बोला – 'दादाजी ! आपने जो कविता सुनाई, वह इन लोगों की समझ में तो आ गई क्योंकि ये तो कुछ दिन से आपकी कक्षा में आ रहे हैं, कॉलेज में भी ये लोग आपकी चर्चा करते रहते हैं, पर मुझे तो उसमें से थोड़ा समझ में आया क्योंकि मैं तो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा हूँ तो मुझे कुछ शब्दों के अर्थ समझ में नहीं आये, आप अर्थ भी बता दो ना'

पण्डितजी बोले – 'देखो बेटा ! इस छन्द में यह कहा है कि जब उनसे किसी ने पूछा कि सब कुशल तो है न? तब उन्होंने कहा – जो भी दिन बीत रहे हैं, वह हमें प्राप्त आयु में से अवश्य कम हो रहे हैं, वह दिन जैसे अंजुली में जल हो, वह एक-एक बूंद करके खाली होता जाता है; उसी प्रकार कितनी भी आयु मिली हो, वह एक-एक दिन करके समाप्त हो रही है, शरीर धीरे-धीरे कमजोर हो रहा है, नेत्र ज्योति कम पड़ रही है, ताकत कम हो रही है, बुढ़ापा नजदीक आ रहा है, मृत्यु ऊपर से देख रही है, इस तरह पूरा मनुष्य भव ही धर्म प्राप्त किये बिना विफल जा रहा है, फिर भी मिलनेवाले

आकर पूंछते हैं कि सब कुशलता है? तो भइया ! ऐसी दशा में कैसी कुशलता?'

पूरी बात समझकर संजय हंसते हुये बोला 'दादाजी ! आप बात तो बिल्कुल सही कह रहे हैं। पर अभी तो हमारे पढ़ने के दिन हैं नौकरी करेंगे, शादी करेंगे, घर बनायेंगे, बहुत काम बाकी है; यदि हम अभी से धर्म करने बैठ गये तो जिन्दगी कैसी चलेगी?'

'वाह बेटा ! बात तो तुमने जोरदार की है। हम यह कहाँ कह रहे हैं कि लोग दुकान बन्द करके मन्दिर में ही बैठ जायें, पर गृहस्थी में रहते हुये जो किया जा सकता है, वह तो करें।

देव पूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्यायस्संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां, षट्कर्माणि दिने-दिने।।

जिनेन्द्र पूजन, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - यह छह कार्य प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करना चाहिये। पर इन सबको छोड़कर दुकान को मन्दिर, ग्राहक को देवता, व दुकान पर दो के चार करने को पूजा मान लिया है और मोक्ष के विमान के आने का इन्तजार है।' यह कहते हुये पण्डितजी लोगों की मानसिकता पर दुःखपूर्ण हंसी हंसने लगे।

'बच्चो! हम आपसे यह कहना चाह रहे हैं कि जैसे दुनिया के लोग केवल धन के पीछे भाग रहे हैं, ऐसे मत भागना। दुनिया में अज्ञानी तो अपने जीवन से भी ज्यादा धन को महत्त्वपूर्ण मानने लगे हैं, यह हमारा भविष्य दु:खमय करनेवाला कार्य है।'

नीलेश बोला – 'दादाजी ! यह बात समझ में नहीं आई कि लोग अपनी जिन्दगी से भी ज्यादा धन को कैसे मानते हैं।'

पण्डितजी बोले – 'बेटा ! यह मैं नहीं कह रहा हूँ, आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं कि –

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष हेतुं, कालस्य निर्गमम् ।
वांछतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।

'दादाजी इस छन्द में आचार्यदेव ने क्या कहा है?' अंकित ने पूछा।

'इसका मतलब है कि समय बीतने पर दो काम होते हैं – एक तो यह कि कि जितना समय/साल बीते, उतनी साल अपनी जिन्दगी के कम हो गये और उतने समय में ही पुण्योदय से धन दौगुना/चौगुना हुआ। अब इन दो कामों में से इस समझदार माननेवाले लोभी जीव को धन बढ़ गया, यह तो दिखता है, सबको बताता है, बड़े हुये धन को देखकर खुश

होता है, पर जो जिन्दगी के साल कम हो गये, उन पर ध्यान ही नहीं जाता है, जो कि इतना कीमती समय है कि पूरा धन देकर भी वह उसे वापस नहीं पा सकता। बोलो बच्चो ! सही बात है या नहीं ?'

सब बोले 'बिल्कुल सही बात आचार्यदेव ने कही है, हम सब भी समय बीतने की चिंता न करके धन कमाने के बारे में ही सोचते हैं।'

'हाँ तो बच्चो ! मैं कोई ज्यादा समझदार तो हूँ नहीं, मैं तो ठहरा गाँव का गंवार आदमी, पर मैंने तो जिस दिन ये बात पढ़ी, उसी दिन से दुकान बन्द करके बची हुई जिन्दगी को आत्महित में लगा दिया। अब तो बस एक ही काम है और वह यह कि जिनवाणी पढ़ना, पढ़ाना और जितना बन सके, उसी के अनुसार शान्ति से जीवन जीना। बच्चो ! तुम सब तो होशियार हो, समझदार हो, कोई मेरे जैसे गाँव के.....।'

'दादाजी ! समझदार तो आप ही हैं, ये सब बड़ी-बड़ी डिग्रीधारी और पैसा कमानेवाले लोग समझदार नहीं हैं। जो समझदार आचार्यों की बात समझ सके, समझा सके, वही समझदार है। इसलिए आपने ही समझदारी का काम किया है। दादाजी हम भी कोशिश करेंगे कि पढ़ाई के साथ या

नौकरी करते हुये कहीं भी रहें पर धन से ज्यादा अपने इस बेशकीमती जीवन और उससे भी अमूल्य इस महान जैनधर्म को समझेंगे। धर्म गंवाकर धन नहीं कमायेंगे।'

'बस-बस बच्चो! अधिक भावना में बहकर कोई संकल्प नहीं लेना है, पर सत्य को जानने के लिए जिज्ञासु बने रहना। अब बच्चो - जाओ पढ़ाई करो, अपना काम करो, हमें क्या हम तो फालतू हैं।'

'नहीं दादाजी ! सही काम तो आप ही कर रहे हैं, फालतू के कामों में तो हम लोग लगे हैं, पर अब कोशिश करेंगे कि इन फालतू के कामों में लगे होने पर भी अपने काम का भी काम करें।'

इतना कहकर सभी ने दादाजी के चरण स्पर्श किये और दादाजी ने भी सदाबहार मुस्कान के साथ उनके उज्ज्वल भविष्य का आशीर्वाद दिया। ❍

निंदा करना किसी की, नहीं रखा अभिप्राय।
विकृति हैं जो समाज में, कहना ही है उपाय।।162।।

जो विकृति है समाज में, सब मिल करवें दूर।
सार्थक करें प्रयास यदि, हो प्रचार भरपूर।।163।।

13

गुण ही आभूषण...

रविवार को युवावर्ग की कक्षा चल रही थी। कक्षा में पण्डितजी, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित शाश्वत सिद्धान्तों के साथ-साथ सदाचार की प्रेरणा भी देते रहते थे।

पण्डितजी ने कहा- 'मैंने सुना है कि आजकल नहाने के लिए एवं शरीर को सुन्दर दिखाने व दूसरों का ध्यान अपनी

ओर खींचने तथा अपनी नासिका के सुख के लिए लोग तरह-तरह के साबुन, क्रीम पाउडर आदि लगाते हैं जो कि अनेक संज्ञी पंचेन्द्रिय पशुओं को मारकर उनकी चर्बी, हड्डी आदि का पाउडर उनमें मिलाकर बनाते हैं। अरे भइया ! ऐसी चीजों से बनी हुई वस्तु को अपने शरीर पर लगाने से तो हम नहाने के बाद भी अशुद्ध हो गये, मंदिर में आने लायक व जिनवाणी पढ़ने लायक भी नहीं रहे तो फिर धर्म प्रगट होने की बात तो दूर ही रही।'

मयंक बोला – 'दादाजी ! पर यहाँ नहाने के लिए साबुन लगाना तो जरूरी ही है न।'

'हाँ बेटा! तेल, साबुन लगाना शरीर की सफाई व स्वास्थ्य के लिए जरूरी है पर जो हिंसक सामग्री से बना हो, वही काम में लेना चाहिये, यह कहाँ जरूरी है?'

'दादाजी ! आपका शरीर तो इकदम चमक रहा है, आप कौन सा साबुन लगाते हो, हमें बता दो, हम वहीं लगाने लग जायेंगे।' सतीश ने हंसते हुये कहा।

'बेटा ! हम तो साबुन लगाते नहीं, मुल्तानी मिट्टी लगाकर ही काम चलाते हैं, वह हिंसक भी नहीं है, सस्ती भी है, और बालों को एकदम मुलायम करनेवाली है। आप अगर मिट्टी

ही काम में लो, तब तो बढ़िया है ही, पर न ले सको तो कम से कम अहिंसक साधनों का उपयोग तो करना ही चाहिये।'

'पर दादाजी ! उन साबुनों से शरीर तो एकदम शुद्ध और बढ़िया हो जाता है।'

'बेटा ! शरीर तो कभी भी शुद्ध होता ही नहीं है। वह तो बना ही अशुद्धि से है। कोयले को किस साबुन से नहलाओगे बेटा कि वह सफेद हो जाये?'

'दादाजी ! कोयला तो कभी भी सफेद नहीं हो सकता, हाँ साबुन जरूर काला हो जायेगा।' अमित ने कहा।

'बस बेटा ! ऐसा ही मल-मूत्र-खून-हड्डी से बना हुआ यह शरीर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता।

एक छोटी सी घटना है –

एक बार एक गाँव में एक बारात आई। बारात में दूल्हे को घोड़े पर बैठाते हैं न? पर गाँव में शादियाँ अधिक होने से इस बारात के लिए घोड़ा नहीं मिल पाया।'

'फिर क्या हुआ?'

'फिर एक युवा एक दादाजी के साथ गाँव में घोड़ा देखने के लिए निकले। गाँव-में घूमते हुये घोड़े जैसा पर घोड़े से

छोटा एक गधा मिला। वह युवा बोला – दादाजी ! इसको ले चलें, इसी से काम चला लेंगे। दादाजी हंसते हुये बोले – अरे बेटा! गधे के ऊपर दूसरे गधे को नहीं बैठाया जाता।

वह भी हंसते हुये बोला – दादाजी ! आप दूल्हे राजा को गधा कह रहे हो।

'अरे बेटा! शादी करने से सुखी हो सकते होते तो नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, भगवान महावीर भी शादी न कर लेते, पर उन्होंने तो सर्व समस्याओं की जड़ शादी नहीं की, फिर भी जो शादी करके सुखी होना चाहे, वह गधा ही तो कहलायेगा।' इस बात पर दोनों ही हंसने लगे।

'अब बच्चो! मैं आपसे पूँछता हूँ कि गधे को अच्छे साबुन से नहलाकर और तुम्हारी पसंद का इत्र लगाकर घोड़ा बना सकते हैं कि नहीं ?'

'अरे पण्डितजी ! गधे को घोड़ा बनाना असंभव है। चाहे किसी भी साबुन-शैम्पू से नहलाओ या कोई सा भी तेल लगाओ।'

'बस बेटा! तो इसीप्रकार इस अपवित्र शरीर को कुछ भी लगाओ, यह पवित्र नहीं हो सकता। परन्तु लौकिक दृष्टि से शुद्ध रखने के लिए छने पानी और अहिंसक साबुन आदि का

प्रयोग करके यथायोग्य सफाई करना चाहिये, बाकी तो बेटा! कुछ भी लगाओ वह पवित्र हो नहीं सकता। हमने अपवित्र शरीर को पवित्र बनाने के लिए ही अपने आप को अर्थात् अपने आत्मा को नाना प्रकार के राग-द्वेष करके अपवित्र किया है।

पूजन में पंक्तियाँ आई हैं -

'तन का उपचार किया अब तक,
उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहाकर के,
तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु,
तुमको चंदन सम है पाया।।
होकर निराश सब जग भर से,
अब सिद्ध शरण में आया।।'

अभी तक हमने शरीर जो कि जड़ है - अचेतन है, उसको ही अपना मानकर उसकी ही सफाई की है, हम यह जान ही नहीं सके कि सच में मैं कौन हूँ ? मेरी पवित्रता और अपवित्रता क्या है?'

'पण्डितजी ! अब आप ही बताइये ना कि हमारी पवित्रता और अपवित्रता क्या है?' रोहित ने पूछा।

'बेटा! आत्मा की अपवित्रता मोह-राग-द्वेष, क्रोध-मानादि कषायें, हिंसादि पापों के भाव हैं और पवित्रता ज्ञान और वीतरागता है। जैसा कि कहा है –

तेरी शुचिता ज्ञान है और अशुचिता राग।
राग आग को त्याग कर निज को निज में पाग।।'

'दादाजी ! ऐसी पवित्रता प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिये ?' मेघवीर ने पूछा।

'बच्चो! सबसे पहले हमें जिनवाणी का अच्छी तरह स्वाध्याय करना चाहिये, स्वाध्याय से ही हमें मार्ग मिलेगा, हमारा राग-द्वेष कम होगा और भेद-विज्ञान प्रगट होगा, जिससे अशुद्धता का नाश होगा और शुद्धता की प्राप्ति होगी। जब तक वीतरागतारूप पवित्रता की प्राप्ति न हो, तब तक राग की मंदता अर्थात् अन्याय-अनीति-अभक्ष्य का त्याग करना चाहिये, जिन पदार्थों के सेवन में हिंसा होती हो, उनका त्याग करना चाहिये, जिससे हमारे परिणामों में शुद्धि होगी, जो स्थायी शुद्धि में कारण बनेगी।'

'पण्डितजी! पर एक बात तो है, क्रीम-पाउडर लगाने से सुन्दर तो दिखते हैं।' प्रीतम ने हँसते हुए कहा।

'बेटा! हम तो ठहरे गाँव के गंवार आदमी, हम तो यह

सब लगाना जानते नहीं हैं परन्तु तुमने कहा कि इन चीजों के लगाने से अच्छे लगने लगते हैं, इसका मतलब तो यही हुआ कि तुम स्वयं अच्छे नहीं हो, सुन्दर नहीं हो; क्रीम-पाउडर अच्छे हैं और वे ही अच्छे लगते हैं। पाउडर लगे हुये चेहरे पर पसीना आ जाये तो गंगा-यमुना अलग से दिखने लग जायें।

अरे बेटा! अपने में विनम्रता, ईमानदारी, परिश्रम, सहयोग, समन्वय, सरलता, के गुण प्रगट करो तो बाहर के किसी पाउडर की जरूरत नहीं पड़ेगी और तुम्हारा आत्मा सुन्दर लगेगा, जिसकी सुगंध सब तरफ फैलेगी, वही सुन्दरता आत्मा की सच्ची सुन्दरता है।

आज बस इतना ही। जाओ बेटा ! अभी परीक्षा की तैयारी करो।'

'ठीक है दादाजी ! अभी तो हम परीक्षा की तैयारी करने जा रहे हैं, परन्तु अब हम जल्दी ही जिनवाणी का स्वाध्याय करके अपनी सुन्दरता बढ़ायेंगे।' सौरभ बोला।

भोलारामजी अपनी चिरपरिचित हंसी बिखेरते हुये बोले- ओखे। ❍

महादान बस ज्ञान है, औषध दान सुदान।
ज्ञानौषध भरपूर हो, तब हो नव निर्माण।।140।।

14

सल्लेखना...

पण्डित भोलारामजी के पोते चैतन्य ने सी.ए. करने के बाद शिवपुरी में ही अपना कार्यालय खोल लिया था, साथ ही दादाजी की प्रेरणा से स्वाध्याय में निरन्तर आता ही था, जयपुर से संचालित मुक्त विद्यापीठ से पत्राचार द्वारा शास्त्री की परीक्षा भी पास कर ली थी। चैतन्य भी दादाजी की ही तरह संतोषवृत्ति वाला, धर्मप्रेमी युवक था। रविवार को चलने वाली युवावर्ग की कक्षा चैतन्य ही लेने लगा था। भोलारामजी स्वयं उसकी कक्षा में बैठते, वह चैतन्य की तर्क शक्ति व नवीन उदाहरणों से युवावर्ग को समझाने की कला से मन ही मन बहुत ही प्रसन्न होते और सोचते कि अब शिवपुरी में स्वाध्याय की परम्परा मेरे बाद भी निरन्तर चलती रहेगी।

चैतन्य एवं उसके मित्रों की सक्रियता के कारण मन्दिर में पूजन-स्वाध्याय-कक्षा सभी में किशोर व युवावर्ग की सहभागिता बढ़ती जा रही थी। भोलारामजी अब कभी-कभी रविवार के अतिरिक्त भी चैतन्य को प्रवचन के लिये बैठाने लगे

थे। साप्ताहिक गोष्ठियों के व पाठशाला के माध्यम से अन्य युवाओं को भी बोलने/पढ़ाने हेतु तैयार किया जा रहा था। इस तरह शिवपुरी में आध्यात्मिक समाज का निर्माण हो रहा था।

कर्म का उदय सभी के सदाकाल एक सा नहीं चलता। भोलारामजी भी इसके अपवाद नहीं थे। उम्र तो निरन्तर वृद्धिंगत थी ही परन्तु कहा जाता है कि 'मन के हारे हार है, मन

के जीते जीत।' भोलारामजी मन से कभी हार नहीं मानते थे, अतः युवाओं की तरह निरन्तर सक्रिय एवं जोश से भरे रहते थे। परन्तु कुछ दिन से असाता का तीव्र उदय आने से उनका स्वास्थ्य खराब चल रहा था, जिसके कारण कई दिन से भोजन भी नहीं कर पा रहे थे। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार फल व उनके रस ही किंचित् ग्रहण कर रहे थे।

पुत्र सिद्धप्रकाश व पुत्रवधु समता अपनी ओर से सेवा व चिकित्सा का पूरा प्रयास कर रहे थे परन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा था। सिद्धप्रकाश ने समीपवर्ती बड़े शहर में स्थित अस्पताल में इलाज कराने हेतु उनसे आग्रह किया, परन्तु उन्होंने हंसते हुये टाल दिया और कहा कि 'बेटा ! अगर आयु शेष होगी और तुम सबके साथ रहने का संयोग होगा तो निश्चित ही उदय बदलेगा और स्वास्थ्य सही हो जायेगा। मैंने पिछले 25 वर्ष से कभी भी अंग्रेजी दवाइयों का सेवन नहीं किया है। यदि तुम वहाँ ले गये तो मुझे अभक्ष्य दवाइयाँ लेना पड़ेंगीं और सुधार तो कर्म के अनुसार ही होगा, बस मेरा नियम टूट जायेगा, लाभ तो कुछ भी नहीं होगा।'

बेटा अपने पिताजी की भावना को समझता था उनके जीवन की साधना को अपने मोह के वश मिटाना नहीं चाहता था। अतः पुत्र व पुत्रवधु दोनों ही उनके पास में रहते, जिनवाणी

सुनाते, प्रात:काल गाड़ी से मन्दिर दर्शन कराने ले जाते, परन्तु अब सामूहिक स्वाध्याय बन्द हो गया था। चैतन्य भी दादाजी के पास बैठकर आध्यात्मिक चर्चायें करता और वे मंत्रमुग्ध होकर सुनते। यदि कभी चैतन्य कार्यालय से देर से आता तो वह सिद्धप्रकाश से हंसते हुये पूंछते –'हमारे पण्डितजी कहाँ गये? मेरी समाधि करानेवाला तो चैतन्य ही है। सिद्धप्रकाश! चैतन्य ही मेरा डॉक्टर है और उसके द्वारा जो जिनवचन सुनाये जाते हैं, वे ही मेरी औषधि हैं।'

एक दिन सिद्धप्रकाश ने सभी साधर्मियों के सामने भोलारामजी से पूछा –'पिताजी ! आपकी कोई इच्छा हो तो बतायें, हम उसकी पूर्ति करने का प्रयास करेंगे।'

भोलारामजी बोले – 'सिद्धप्रकाश ! अज्ञानी की इच्छायें कभी पूरी नहीं होतीं, और ज्ञानी को कोई इच्छा नहीं होती। पापोदय में चाहने पर भी कोई कार्य नहीं होता और पुण्योदय में सहज ही सभी कार्य हो जाते हैं।

जैसा कि कहा भी है न –

पापोदय में चाह व्यर्थ है, नहीं चाहने पर भी हो।
पुण्योदय में चाह व्यर्थ है, सहजपने मनवांछित हो।।

बेटा! लौकिक दृष्टि से मेरी एक ही इच्छा थी कि मेरा

परिवार सदाकाल मेरी तरह अपनी माँ अर्थात् जिनवाणी माँ का बनाया भोजन नित्य करता रहे, जिनवचनों की चर्चा व चर्या में अपना अधिकतम समय लगाये। मेरी यह इच्छा तो कब की पूर्ण हो चुकी है। अब तो मुझे न लौकिक और न लोकोत्तर कोई भी चाह है। लोक की किसी संपदा या किसी वस्तु की मुझे आवश्यकता नहीं है क्योंकि **'मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण।'** जो परिपूर्ण हो, उसे अन्य किसी की क्या आवश्यकता हो सकती है।'

पण्डितजी की बात सुनकर व रुग्ण तथा वृद्ध शरीर होते हुये भी चेहरे पर आत्मिक संतोष और तेज देखकर सभी भाव विभोर हो गये। सभी को लगा कि सच में यह एक मुक्तिमार्ग का सच्चा साधक है, जो अपनी साधना में निरन्तर संलग्न है।

सभी साधर्मी भावना भाते कि पण्डितजी का स्वास्थ्य शीघ्र ही सुधर जाये और उन्हें फिर से उनके मुख से जिनवाणी सुनने को मिलने लगे।

पण्डितजी से मिलने के लिये प्रतिदिन ही कोई न कोई आता और भारतीय परम्परा के अनुसार रायचन्द बनकर कोई न कोई राय भी अवश्य देता। पर भोलारामजी का पक्का निर्णय था कि 'सुनना सबकी, करना मन की।' अब तो कोई

भी मिलने आता और लौकिक चर्चा करता तो वह साफ मना कर देते कि 'भाई ! यदि आपको कुछ तत्त्वचर्चा करनी हो तो करो, अन्यथा मुझे अपने आप में मस्त रहने दो।'

भोलारामजी से जो भी मिलता, उनके कमजोर होते शरीर को देख दु:खी होता परन्तु चेहरे की कान्ति को देखकर समझ नहीं पाता कि यह व्यक्ति कई दिन से अस्वस्थ है। एक दिन एक व्यक्ति ने पूछ ही लिया कि पण्डितजी ! आप इतने अस्वस्थ रहते हुये व बिना भोजन किये भी इतने प्रसन्न कैसे रह लेते हैं ?

पण्डितजी ने जबाब दिया कि 'भाई! आपके देखने का नजरिया गलत है। मैं पहले शरीर के कारण प्रसन्न रहता होता तो आज की परिस्थिति में दुखी होता परन्तु भाई ! मेरी प्रसन्नता का कारण शरीर नहीं है, मेरी प्रसन्नता का कारण आत्मबल है, जो मुझे आगम बल से प्राप्त हुआ है। मुझे पता है कि शरीर का परिणमन पहले भी स्वतंत्र था, आज भी स्वतंत्र है। मैं तो हर परिस्थिति में मात्र ज्ञाता हूँ।'

एक दिन एक व्यक्ति ने आकर पण्डितजी से कहा कि – 'पण्डितजी अब तो आपको सल्लेखना ले लेना चाहिये।'

भोलाराम जी अपने भोलेपन से हंसते हुये बोले – 'भाई ! सल्लेखना तो मेरे जीवन में सदैव चल रही है। आत्म जागृति

पूर्वक विषय-कषायों से विरक्त होना अर्थात् कषायों को कृष करना सल्लेखना है, वह तो मैं कर ही रहा हूँ; साथ ही बिन चाहे ही शरीर भी कृष हो रहा है, हो रहा है तो होने दो।

मेरी तो सदैव भावना रहती है –

लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।'

मैं तो यहाँ से जाने के लिये सदैव तैयार हूँ, न तो मरने की इच्छा है, न ही जीने की वांछा। निर्वांछक जीवन जी रहा हूँ।

एक युवा बोला 'पर पण्डितजी ! आपको मृत्यु का डर नहीं लगता ?'

वह हंसते हुये बोले-

न मे मृत्युः कुतो भीतिः, न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले।।

अरे भाई ! मेरी मृत्यु हो ही नहीं सकती तो किस बात का डर, मुझ चैतन्य परमात्मा को ब्लड प्रेशर, शुगर, कैंसर आदि की बीमारियाँ छू ही नहीं सकतीं तो फिर किस बात का दुःख ? मैं बालक, युवा या वृद्ध नहीं हूँ, यह सब अवस्थायें तो शरीर की हैं, पुद्गल की हैं। जो शरीर और आत्मा को एक मानता है, वह इन बीमारियों से दुःखी होता है, पर जो शरीर और आत्मा के भिन्न-भिन्न स्वरूप को जानता है, वह दुःखी

क्यों होगा? बच्चो ! क्या तुम क्रिकेट में अपने विरोधी पाकिस्तान के हार जाने पर दुःखी होते हो ? नहीं न। उसी तरह मुझ चैतन्य से भिन्न मेरे स्वभाव से विपरीत शरीर के कमजोर होने, बीमार होने, छूटने पर, मुझे दुःख क्यों होगा ?'

इसी बीच किसी नवयुवक ने पूछा कि 'पण्डितजी ! इस तरह शरीर से ममत्व तोड़कर सल्लेखना या समाधिमरण लेना तो आत्महत्या के समान है ?

पण्डितजी मुस्कराते हुये धीरे-धीरे बोले 'भाई! कषाय पूर्वक अर्थात् राग-द्वेष के कारण शरीर का त्याग करना आत्महत्या कहलाता है। परन्तु कषाय के अभावपूर्वक विशिष्ट परिस्थिति में देह के प्रति मोह त्यागने को आत्महत्या नहीं कहते।'

'वे विशिष्ट परिस्थतियाँ कौन-सी हैं, जब देह से नेह त्यागकर आत्मसाधना की जाती है?'

बंधुवर ! आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है कि -

उपसर्गं दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे।
धर्माय तनु विमोचनमाहुः, सल्लेखनामार्या।।

'अर्थात् उपसर्ग, दुर्भिक्ष अकाल आदि, वृद्धावस्था या भयंकर रोग आने पर जिनका कि प्रतिकार न किया जा सके,

और इन परिस्थितियों के आने पर धर्म साधना या आत्महित की भावना से सभी से कषाय भाव का त्याग करके, विषयों व शरीर से विरक्त होना ही समाधिमरण या सल्लेखना है, यदि इन परिस्थितियों को टाला जा सकता हो तो समाधिमरण ग्रहण नहीं किया जा सकता।'

सभी लोग पण्डितजी की तत्त्वज्ञान के प्रति की दृढ़ता, चित्त की प्रसन्नता, जीवन की सहजता-सरलता देखकर उनके स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुये विदा हुये और पण्डितजी सबसे विदा होकर अपने आप में मस्त हुये।

भोलारामजी सदैव आत्म चिंतन में मस्त रहते, यदि कोई आता तो उसके साथ भी आत्मतत्त्व की ही महिमा करते। उनकी जीवनचर्या से शिवपुरी व आसपास के लोग बहुत ही प्रभावित हुये, साथ ही सल्लेखना के संबंध में अभी तक जो कुछ उन्होंने सुना था व अपने मन से कल्पना में ही सल्लेखना के संबंध में भ्रम पाल रखे थे, वह भ्रम भी दूर हुये।

भोलारामजी सकारात्मक सोच, संतुलित प्राकृतिक आहार, साधर्मियों के भाग्य, साता के उदय आदि कारणों के मिलने पर धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे, उनके स्वास्थ्य लाभ की सूचना मात्र से नगर के साधर्मियों में खुशी की लहर दौड़ गई। ❍

आधुनिकता की चल रही बयार
प्रदर्शन की चारों ओर है भरमार
स्वारथ के वशीभूत है सारा संसार
धर्मक्षेत्र भी बनता जा रहा एक बाजार
साधर्मियों में घट रहा है प्यार
युवा वर्ग में नहीं है धार्मिक विचार
पद पैसा प्रतिष्ठा की मची है होड़।
लक्ष्य बिना ही सभी रहे हैं दौड़
भक्ष्य-अभक्ष्य, स्व-पर का नहीं है विवेक
रागी वीतरागी सभी धर्म लगते हैं एक।
स्वाध्याय बिन होगा नहीं ज्ञान का प्रकाश
संस्कार और संस्कृति का हो रहा है ह्रास।
सादा जीवन और उच्च हैं जिनके विचार।
चाहते हैं अहर्निश कैसे हो तत्त्व-प्रचार।।
सरल चित्त अरु मृदुभाषी हैं भोलाराम
जिनवच पढ़ना और पढ़ाना बस जिनका काम।
रंग बदलती दुनिया को आश्चर्य से देखते हैं
तन के भोले मन से भाले लोग देखकर जो कहते हैं
आज के लोग पढ़ लिख हो गये हैं होशियार
हम क्या जाने भइया ! हम तो ठहरे गाँव के गँवार।